युगल प्रेममूर्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥

(अग्निपुराण)

वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, अक्टूबर १९७१ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ५३९

परस्पर दोउ चकोर, दोउ चंदा

परस्पर दोउ चकोर, दोउ चंदा ।
दोउ चातक, दोउ स्वाती, दोउ घन, दोउ दामिनी अमंदा ॥
दोउ अरबिंद, दोऊ अलि लंपट, दोउ लोहा, दोउ चुंबक ।
दोउ आशिक, महबूब दोउ मिलि, जुरे जुराफा अंबक ॥
दोउ मेघ, दोउ मोर, दोउ मृग, दोउ राग-रस-भीने ।
दोउ मनि बिसद, दोउ वर पंनग, दोउ बारि, दोउ मीने ॥
भगवतरसिक बिहारिनि प्यारी, रसिक बिहारी प्यारे ।
दोउ मुख देखि जिअत, अधरामृत पियत, होत नहिं न्यारे ॥

—श्रीभगवतरसिकजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संसारकी स्मृति हटानेसे नहीं हटती; इसकी चिन्ता आप छोड़ दीजिये और संसारकी स्मृतिके स्थानपर भगवान्‌की स्मृतिको लाकर बैठा दीजिये, संसार अपने-आप निकल भागेगा। बार-बार भगवान्‌की स्मृति करें—स्मृतिका अभ्यास करें—अभ्यासमें मन न लगे, तब भी करें। भगवत्-स्मृति बड़ी मीठी है—स्वभावतः मीठी है और ऐसी मीठी है कि इसकी मिठाससे कभी मन ऊबेगा नहीं; इसमें नये-नये स्वादकी सृष्टि होती रहेगी। इतना ही नहीं, जहाँ इसकी मिठास आयी कि जगत्‌का सब कुछ 'फीका' लगने लगेगा। अतएव भगवान्‌का स्मरण करें, अभ्यास स्मरणका करें; अभ्यास करते-करते इसमें स्वाद आने लगेगा, रुचि पैदा होगी, मिठास आने लगेगी। जबतक उसमें मिठासका अनुभव न हो, तबतक अभ्यासपूर्वक स्मरण करें।

मनके विकारोंसे छुटकारा पानेके दो तरीके हैं—एक वैराग्यके द्वारा, ज्ञानके द्वारा उनका शमन करना और दूसरा, हम जैसे हैं वैसे-के-वैसे अपनेको भगवान्‌को समर्पित कर दें। भगवान् अपने-आप दोषोंका परिहार करेंगे, हमें उसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। पहला उपाय बड़ा सुन्दर है, उसे करना ही चाहिये; पर है वह बहुत कठिन। दूसरा उपाय देखनेमें सामान्य प्रतीत होता है; पर है वह अमोघ। देखें—आपके, पास एक मकान है; आपने उस मकानको किसीको बेच दिया या उपहार-स्वरूप दे दिया। मकान उसका हो गया। अब मकानमें यदि कूड़ा-करकट है, टूट-फूट है तो उसकी सफाई, उसकी मरम्मत कौन करायेगा? इनका उत्तरदायित्व उसीपर है, जिसने मकान लिया है। इसी प्रकार जब हम अपनेको भगवान्‌के समर्पित कर देते हैं, तब हमारे दोष, हमारी त्रुटियाँ, हमारी कमजोरियाँ, हमारा तन, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि—सब कुछ भगवान्‌का हो जाता है। अब उनको स्वच्छ रखना, निर्मल रखना भगवान्‌के जिम्मे है। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने-आपको भगवान्‌को समर्पित कर दिया था। एक दिन उन्हें अपने मनमें संसार झाँकता हुआ दिखायी पड़ा। वे बोल उठे—

यह हृदय-भवन प्रभु तोरा। यहाँ आय बसे बहु चोरा॥

—'हे राघवेन्द्र! सावधान हो जाइये, तुम्हारे घरमें चोर घुसने लगे हैं। हमको पता नहीं है, यह तुम्हारा घर लुट जायेगा।' यह कौन कह सकता है? जो अपना हृदय भगवान्‌को दे चुकता है। अतएव बड़ा सीधा उपाय है—'हम जैसे हैं, वैसे-के-वैसे अपनेको भगवान्‌को समर्पित कर दें; भगवान् हमारे सारे दोषोंको खा जायँगे।'

हमारी भाँति अर्जुनको भी अपने दोषोंकी चिन्ता हुई थी। भगवान्‌ने गीताका उपसंहार करते हुए कहा—

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि'

—'तुम्हें सारे पापोंसे मैं मुक्त कर दूँगा, मैं छुड़ा दूँगा। तुम्हें पापोंसे मुक्त होना नहीं पड़ेगा, तुम्हारे सारे पाप मैं धो दूँगा।' इतना ही नहीं, वे अर्जुनको प्रेरित करते हुए बोले—'मा शुचः—तुम सोच मत करो।' इस प्रकार भगवान्‌ने अर्जुनको ढाढस बँधाया और कहा—"भैया! तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त मैं कर दूँगा; तुम सोच मत करो—चिन्ता मत करो। तुम केवल एक ही काम करो—'मामेकं शरणं व्रज—एक मेरी शरणमें आ जाओ।' दूसरेकी शरणमें मत जाओ। दूसरी तरफ देखो मत, दूसरी तरफ ताको मत। अपने सारे विकार, सारे दोष, सारी त्रुटियाँ, सारी कमजोरियाँ मुझे अर्पित कर दो।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम पवित्र होकर भगवान्‌के पास जायँ और अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित करें—यह बहुत ही अच्छा है। पर यदि हम पवित्र न हो सकें तो क्या हमें भगवान्‌की शरणमें गति नहीं मिलेगी ? इसका उत्तर भगवान् देते हैं—'नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तुम्हें अपनी शरणमें लेनेको—अपने चरण-प्रान्तमें स्थान देनेको सदा तैयार हूँ। तुम केवल मेरी बातपर विश्वास करके मेरी शरणमें आ जाओ, और कुछ नहीं करना है।' सचमुच भगवान् पामर-से-पामरको भी अपनी शरणमें रखनेको तैयार हैं। वे कभी यह नहीं देखते कि शरणमें आनेवाला कौन है, कैसा है। वे कभी उसके पूर्वके इतिहासकी ओर नहीं देखते, उसके पूर्व-कर्मोंकी ओर नहीं देखते; वे देखते हैं कि 'यह मेरी ओर आ रहा है कि नहीं।' 'मेरी ओर आ रहा है'—यह देखते ही भगवान् उसकी ओर चल पड़ते हैं; चल ही नहीं देते, तत्काल पहुँचकर उसे हृदयसे लगा लेते हैं। जहाँ भगवान्‌ने पहुँचकर हमें स्पर्श किया, हृदयसे लगाया कि सारे पाप अपने-आप नष्ट हो गये, सारे ताप शान्त हो गये। अतएव हम जैसे भी हैं, जहाँ भी हैं, जो कुछ भी है—भगवान्‌के समर्पित हो जायँ। बस, यही करना है।

मनको तेरा ही सम्बल है !

(रचयिता—श्री'सतीश' वर्मा, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न)

बहुत बार डूबते हृदयको तुमने बढ़कर दिया सहारा।
करुणाकर, जीवनधन ! मेरे, मनको तेरा ही सम्बल है॥
दीन-हीन साधना-त्यागसे
रहित पाप-पङ्किल तन-मन हैं !
दीनबन्धु ! शरणागत हूँ मैं,
चरणोंमें अर्पित जीवन है !!
जब-जब तुम्हें पुकारा मैंने, सदा निकट तुमको पाया है।
दर्शन-हित मन विकल बहुत है, व्याकुल मम लोचन प्रतिपल है॥
अशरण-शरण, दीनबन्धो, अब
करुणाकर, ऐसी करुणा कर !
मन बँध जाए, तन बँध जाए,
लुटे प्राण-गठरी चरणोंपर !!
बहुत देर भटका राहोंपर, नहीं किरण आशाकी देखी।
ज्योतिर्मय ! पथ भूल गया हूँ, तेरा ही साहस है, बल है॥
जिसने तुम्हें पुकारा जब भी
सदा प्यार तुमसे पाया है !
ओ करुणेश ! अशेष दया तव-
सघन-विटप-शीतल छाया है !!
आकर्षण पद-कमलोंमें हो और विकर्षण हो दुनियासे।
नाथ ! दयाकर !! सतत दया कर, जिसके हित यह हृदय विकल है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

[पुराने सत्सङ्गसे]

महात्माओंसे ज्यादा लाभ कैसे लिया जाय ?

जिज्ञासुके मनमें एक प्रश्न स्वाभाविक होता है—महात्माओंसे ज्यादा लाभ कैसे लिया जाय ? इसका उत्तर यह है कि 'उनसे सुनी हुई बातोंको काममें लानेसे।' भगवान् श्रीरामने पुरवासियों आदिके समक्ष यह स्पष्ट किया कि 'वह सेवक मुझे सबसे अधिक प्यारा है, जो मेरी कही हुई बातोंको मानता है—उनपर आचरण करता है'—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

गीताज्ञानकी परिसमाप्ति भी अनुगतभावमें है। भगवान्के सम्पूर्ण उपदेशको सुनकर अर्जुनने अन्तिम शब्द कहे—

'करिष्ये वचनं तव' (गीता १८। ७३)

—'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान् अर्जुनसे यही चाहते थे कि वह उनके सर्वथा अनुगत हो जाय और उनके कथनानुसार कार्य करे।

साधकको चाहिये कि वह महात्माओंकी रुचिके अनुसार चले; ऐसा न कर पाये तो संकेतके अनुसार चले; यह भी सम्भव न हो तो उनकी प्रत्यक्ष आज्ञाके अनुसार चले। उनकी आज्ञापर वह कठपुतलीकी भाँति नाचे। पतिव्रता स्त्रीका उदाहरण सामने रखे।

महात्माओंके आज्ञा-पालनमें तत्परता कैसी हो ?

महात्माके आज्ञा-पालनमें तत्परता नहीं होती, इसका मुख्य कारण है कि हमें अपनी बुद्धिका अभिमान है और श्रद्धाकी कमी है। बुद्धिका अभिमान महात्मामें गुणबुद्धि होनेसे तथा भगवत्कृपासे मिट सकता है। उत्तम श्रेणीकी गुणबुद्धि होनेसे महात्मामें गुण-ही-गुण दिखायी पड़ते हैं, दोषोंकी कल्पना भी उनमें नहीं होती। निम्नश्रेणीकी गुणबुद्धि होनेपर भी महात्मामें कोई दोष दीखनेपर उसे स्वीकार नहीं किया जाता और उनके कथनानुसार आचरणकी चेष्टा रहती है। वास्तविक गुणबुद्धिका स्वरूप तो यह है कि अपनी तथा दूसरोंकी बात युक्तिसंगत दिखायी पड़े, तब भी न माने और महात्मा जैसे कहें, वैसा करे।

दूसरे, तत्परता श्रद्धामें होती है। हमारा जिसके प्रति जैसा विश्वास होता है, उसकी कही बात करनेके लिये हम वैसा ही प्रयत्न करते हैं। महात्माकी बातपर विश्वास होनेसे ही उसको करनेका तीव्र प्रयत्न होगा और प्रयत्न तीव्र हुआ कि मन-इन्द्रियोंका संयम स्वाभाविक हो जाता है एवं अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। अतएव सबसे पहले महात्माओंके प्रति श्रद्धा करनी चाहिये।

महात्माओंके आचरणकी अपेक्षा आज्ञाका पालन मुख्य है।

कुछ लोग महात्माओंके आचरणोंका अनुसरण करना चाहते हैं, पर हमारी समझमें महात्माओंके आचरणके अनुकरणकी अपेक्षा आज्ञाका पालन मुख्य है। आचरणका अनुकरण साधकके लिये कठिन है; कारण, महात्मा जिस स्थितिमें हैं, उसकी कल्पना भी साधकको अभी नहीं हो सकती। दूसरे, आश्रमों एवं वर्णोंके धर्म पृथक्-पृथक् हैं। तीसरे, महात्माओंके आचरणका अनुकरण करने जाकर मनुष्य उनमें दोष-दृष्टि कर सकता है; कारण, महात्मा कौन कार्य किस उद्देश्यसे करते हैं, इसका रहस्य महात्मा एवं भगवान्के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जान सकता। चौथे, मनुष्य-का स्वभाव है कि दूसरेके दोषोंका अनुकरण करनेको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह झट तैयार हो जायगा, किंतु गुणोंका अनुकरण करना कठिन है। महात्माओंके चरित्रमें जो लोक-धर्मके अनुकूल आचरण होते हैं, उनका अनुकरण करना तो हितप्रद है; पर जो उनके आचरण लोकातीत होते हैं, उनका अनुकरण करके तो साधारण व्यक्ति अपना पतन ही करेगा—विनाशको ही प्राप्त होगा। अनुकरण करनेवाले सबसे पहले लोकातीत आचरणोंका ही अनुकरण करते हैं, लोकधर्मके अनुकूल आचरणोंका नहीं और इस प्रकार विनाशको प्राप्त होते हैं। अतएव महात्माओंकी आज्ञाका पालन—उनकी बतायी बातोंका पालन करनेको कहा गया है।

वेदाध्ययन करानेके अनन्तर आचार्य शिष्यको उपदेश देते हुए यही कहते हैं कि 'हम गुरुजनोंके जो शुभ आचरण हों, तुम्हें उन्हींका सेवन करना चाहिये'—

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि॥
(तैत्तिरीय० १। ११। २)

वक्ताको अपने ऊपर श्रोताओंका बड़ा उपकार मानना चाहिये।

सत्सङ्गसे अत्यधिक लाभ है तथा सत्सङ्गका लाभ प्रत्यक्ष भी है। दान, पुण्य और स्नान आदिका फल तो कालान्तरमें होता है, परंतु सत्सङ्गका फल हाथों-हाथ देखनेमें आता है। यदि कोई मनुष्य रात्रिमें सत्सङ्गमें जाकर शास्त्रोंके उत्तम-उत्तम उपदेशोंको सुनता है तो दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसपर उपदेशोंका कुछ असर देखनेमें आता है। झूठ बोलनेके समय उसकी जबान रुकती है, झूठे शब्दोंके लिखनेमें कलम रुकती है और अन्याय करनेमें कुछ मन भी रुकता है। सत्सङ्ग एक बहुत ही उत्तम साधन है। सत्सङ्गमें सुनी हुई बातोंके अनुसार यदि साधन करने लगे, तब तो फिर कहना ही क्या है; परंतु यदि कोई साधन न भी करे और श्रद्धापूर्वक अपने शरीरको नित्य सत्सङ्गमें उपस्थित कर दे, तो भी उसकी तरफसे एक साधन तो हो ही गया; उसने अपना सारा भार वक्ताके ऊपर डाल दिया। उसके उद्धारमें यदि देर होती है तो उसका उत्तरदायित्व वक्तापर आता है। वह तो इस श्रद्धासे कि 'सत्सङ्गमें आनेसे मेरा उद्धार अवश्य ही हो जायगा', निश्चिन्त हो जाता है। यदि वक्तामें सामर्थ्य न हो तो उसे स्पष्ट कह देना चाहिये कि 'मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है।' परंतु श्रद्धालु साधक मिट्टीकी मूर्तिमें श्रद्धा करके यदि उससे उपदेश लेना चाहे तो उस मूर्तिमें भी उपदेश देनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, फिर मनुष्यमें ऐसी शक्तिका उत्पन्न होना और उसके उपदेशसे उद्धार होना कौन बड़ी बात है।

वक्ताको अपने ऊपर श्रोताओंका बड़ा ही उपकार मानना चाहिये। वास्तवमें वक्ताको लाभ भी श्रोताओंकी अपेक्षा बहुत अधिक होता है। जो वक्ता यह समझते और कहते हैं कि 'हम तो लोगोंकी भलाईके लिये ही उपदेश देते हैं, हमारा निजका कोई स्वार्थ नहीं, हमारी मेहनत तो केवल परोपकारके लिये ही है, इसलिये श्रोताओंको वक्ताकी सेवा करनी चाहिये,' वे बहुत ही भूलते हैं। उनका हृदय वास्तवमें अन्धकारसे ढका हुआ है। इसीलिये आजकल इतने अधिक वक्ताओंके होते हुए भी उनके उपदेशोंका कोई विशेष असर नहीं होता। जो स्वयं अन्धकारमें है, वह भला दूसरेके अन्धकारको कैसे दूर कर सकता है? **'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'**—अंधा अंधेको क्या मार्ग दिखाये—इस कहावतके अनुसार ऐसे लोगोंका कथन और श्रोताओंद्वारा उसका श्रवण व्यर्थ होता है।

अपने साथियोंके कल्याणकी भी चेष्टा रखनी चाहिये।

अपने नीचे जो व्यक्ति काम करें, उनको यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास होना चाहिये कि ये हमारा हित चाहते हैं। अपने नीचे काम करनेवाले परमात्माकी तरफ किस प्रकार लगें, यह चेष्टा करनी चाहिये। वे लोग यदि जन्म-मरणके चक्करमें पड़ते हैं तो यह उनके लिये तो लज्जाकी बात है ही, साथ ही हमारे लिये भी वह लज्जाजनक है। अतएव हमें अपने साथियोंके कल्याणकी भी चेष्टा रखनी चाहिये। जो ऐसी चेष्टा रखते हैं, भगवान्‌के यहाँ उनका अधिक आदर है।

गीता अलौकिक धेनु है।

गीता भगवान्‌की वाणी है। इसका वास्तविक रहस्य केवल भगवान् ही जानते हैं। चाहे कितने ही जन्म गीताके स्वाध्यायमें बीत जायँ, पर गीताके रहस्योंका अन्त नहीं हो सकता। यह ऐसी धेनु है, जिसका दूध, चाहे जितना उसे दुहते जाइये, कभी समाप्त नहीं होगा। इसका पूरा दूध तो आजतक न तो कोई दुह सका है और न आगे कोई दुह ही पायेगा। अपने भाव एवं प्रयत्नसे जो जितना दुहते हैं, वे उतने ही सौभाग्यशाली हैं।

सत्सङ्गके विभिन्न स्तर

सत्सङ्गमें मुक्ति देनेकी सामर्थ्य है। अतएव संतोंका—महात्माओंका सङ्ग करना चाहिये। संत न मिलें तो उच्चकोटिके साधकोंका सङ्ग भी सत्सङ्ग है, कारण वह साधक भी संत-श्रेणीमें पहुँचने जा रहा है। संत एवं साधकके अभावमें शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये। भगवान्‌का सङ्ग तो सर्वोत्तम है ही। भगवान्‌के सङ्गका अर्थ है—अपने मनको भगवान्‌के स्मरणमें और अपने शरीरको भगवान्‌की सेवामें नियोजित रखना। इस प्रकार सङ्गकी दृष्टिसे प्रथम स्थान परमात्माका है, दूसरा संतका, तीसरा उच्चकोटिके साधकका और चौथा शास्त्रका है। जिसको जहाँ जैसी सुविधा हो, उसीका सङ्ग करना चाहिये।

बन जाऊँ तेरा प्यारा

(रचयिता—श्रीभगवतनारायणजी भार्गव)

सेवामें तेरी भगवन् ! जीवन बिताऊँ सारा।
ये जीव-जन्तु सारे तेरे स्वरूप, प्यारे ! पूजा करूँ इन्हींकी, दे दे मुझे सहारा॥
नाना हैं रूप तेरे, हैं नाम भी अनेकों। इन सबमें तू रमा है, तेरा सकल पसारा॥
सूरजमें तू चमकता, चंदामें नूर तेरा। हैं मेघ जब गरजते, बजता तेरा नकारा॥
बहती हैं वायुमें भी तेरी ही साँसें, स्वामी ! बिजली-चमक दिखाती पट पीतका नजारा॥
ये दौड़-दौड़ नदियाँ जो सिन्धुमें समातीं, जगकी अनेकताकी रचती हैं एक धारा॥
हँसता चमनमें तू ही, बुलबुलका नाल तेरा। मोरोंकी मटकें तेरी, कोयलका कूक नारा॥
रोगी, दुखी, अपाहिज जगमें कराहते हैं। तेरी तो हैं वे आहें, तू उनके दिलका तारा॥
उनको ही कर दूँ अर्पण तन-मन, स्वबल, स्वधन सब। कर एकताका दर्शन बन जाऊँ तेरा प्यारा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के अमृत-वचन]

भगवान्‌के मङ्गलविधानके अनुसार जो होना होता है, वही होता है। मनुष्य व्यर्थ ही संकल्प-विकल्प करता है।

जो कुछ भगवान्‌ने रच रखा है, वही होगा और वही ठीक होगा—

करी गोपाल की सब होय।

... ...

जो कछु रचि राखी नँदनंदन, मेटि सके नहिं कोय।

यहाँ जो कुछ हो रहा है, उसमें मनुष्य सर्वथा निरुपाय है। अतएव यहाँकी चिन्ता छोड़कर उसका मन भगवद्भजन, सेवा या अन्य किसी निर्दोष कार्यमें लगना चाहिये, नहीं तो बड़ी कठिनता है।

× × ×

तुम सदा प्रसन्न रहो, असली भाग्यका मर्म समझो। भगवान्‌का दासत्व प्राप्त होनेपर कोई कभी अभागा, मूर्ख, पापी रह नहीं जाता। सारे भाग्य, सारी विद्या, सारे पुण्य उसका चरण-वन्दन, चरण-दास्य किया करते हैं।

भगवान् सदा सर्वत्र सबके लिये हैं, यह निश्चय करके अन्तरात्मासे सदा उनकी प्रत्यक्ष संनिधिका अनुभव करो।

अहैतुकी कृपा तो श्रीभगवान्‌की हम सबपर सदा-सर्वदा है, उस कृपामें कभी कमी होती ही नहीं। वह अनन्त, असीम और अपार है। अपनी ओरसे जितनी विश्वासकी कमी है, उतना ही हम उस कृपासे वञ्चित रहते हैं।

× × ×

तुम्हारा मन भजनमें नहीं लग रहा है तो कोई बात नहीं; मन तुम्हारा तो है नहीं; जिन भगवान्‌का मन है, वे चाहे जैसे उसका उपयोग करेंगे। तुम उनको दी हुई चीजके लिये चिन्ता क्यों करते हो—'मय्यर्पितमनोबुद्धिः।' तुम्हारा काम तो, बस, दिन-रात यही देखना है कि मन उनके—प्रभुके सिवा और किसीकी सेवामें तो नहीं लग रहा है।

सारे काम प्रभुकी इच्छासे प्राप्त प्रभुकी प्रीतिके सम्पादक हैं—यों समझकर प्रभुके सुखार्थ, उनके प्रीत्यर्थ सारे काम आनन्दपूर्वक सुचारुरूपसे करते रहो। प्रभुप्रीत्यर्थ होनेवाला प्रत्येक कार्य प्रभुकी पूजा-सेवा ही होता है। फिर उसके साथ प्रभुका स्मरण बना रहे, तब तो कहना ही क्या। अतएव कामसे घबराना नहीं चाहिये। तुम प्रभुका ही समझकर सारा काम करते हो, यह बहुत ही आनन्दकी तथा संतोषकी बात है। यही करना चाहिये।

घर भगवान्‌का मन्दिर और सब लोग भगवत्स्वरूप एवं उनको सुख पहुँचानेके लिये होनेवाला घरका प्रत्येक कार्य भगवत्सेवा—इस भावसे, घरमें आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ जो भी कार्य किया जाता है, वह निश्चय ही भगवत्-पूजारूप होता है और उससे भगवान्‌की मङ्गलमयी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान्‌को याद रखना । जगत्‌की क्षणभङ्गुरता हमारे सामने है । पता नहीं, कौन कब चला जाय । चला जानेवाला मानव कितना अभिमान करता है, क्या-क्या योजनाएँ बनाता है ।

भगवान्‌का स्मरण अधिक-से-अधिक करनेकी चेष्टा करना । चित्तमें खूब प्रसन्न रहना । यह दृढ़ विश्वास रखना कि 'भगवान्‌की मुझपर बड़ी कृपा है ।' उनकी कृपा तो सदा सबपर है ही; जो जितनी मानता है, वह उतना ही अधिक उसका अनुभव करता है । संसारसे तथा संसारके पदार्थोंसे कोई आशा-भरोसा नहीं रखना चाहिये । संसारकी आशा सदा ही निराशा और शोक देनेवाली है—

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥ (दोहावली)

× × ×

शरीर सर्वथा क्षणभङ्गुर है; इसका जरा भी विश्वास नहीं, कब चला जाय । शरीरपर आस्था रखना ही भूल है ।

भगवान्‌का स्मरण निरन्तर करते रहना । भगवत्स्मरण ही महान् लाभ तथा परमानन्दस्वरूप है । इस स्मरणानन्दमें निरन्तर डूबे रहना चाहिये ।

भगवान्‌की कृपा तथा उनके अहैतुक सौहार्दपर विश्वास करके नित्य उसकी अनुभूति करते रहना ।

निरन्तर भगवत्कृपाका तथा भगवत्-संनिधिका अनुभव करते रहना तथा उनकी अखण्ड-स्मृति बनी रहे—इसका प्रयत्न करते रहना ।

प्रसादसे सब दुःखोंका नाश होता है; पर प्रसाद उसे मिलता है, जिसकी मन-इन्द्रियाँ सब भगवान्‌की सेवामें लगी हों तथा वे राग-द्वेष-कामना-वासनासे विमुक्त हों । उस प्रसादसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

(गीता २ । ६४-६५)

× × ×

भगवान्‌को दूर समझा जाता है, इसीसे वे दूर रहते हैं । सच्ची बात तो यह है कि वे सदा सर्वत्र विराजमान हैं—पर जहाँ प्रेम है, वहाँ तो वे प्रत्यक्ष प्रकट रहकर अपनी संनिधिका परम सुखमय, परम पवित्र, परम मधुर अनुभव कराते रहते हैं । वे कहते हैं—'मैं सदा तुममें हूँ, तुम सदा मुझमें हो—हम कभी अलग होते ही नहीं ।' श्यामसुन्दरसे मिलकर गोपियोंके प्राण श्यामसुन्दरमय और श्यामसुन्दर उनके प्राणमय बन जाते हैं—

प्रान भए कान्हमय, कान्ह भए प्रानमय,
हियमें न जानि परै प्रान हैं कि कान्ह हैं ।

× × ×

श्रीभगवान्‌में प्रेम निरन्तर बढ़ता रहे और उस प्रेममें निरन्तर पवित्र मधुर रसकी अनुभूति होती रहे । प्रेमके दो तट हैं—'मिलन' और 'वियोग' । प्रेमी 'मिलन'में बाहर प्रेमास्पदको प्राप्त करता है, पर उन्हें अंदर ले जाना चाहता है और 'वियोग'में अंदर मिला रहता है, बाहर देखना चाहता है । परंतु जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मिलन'में स्मरण-सुखका अभाव होता हो, उस मिलनसे विरहको अधिक श्रेष्ठ और संग्राह्य मानता है, जो स्मरणमें सहायक होता है। वह प्रेमी यदि मिलन चाहता है भी, तो निज-सुखके लिये नहीं। उसे किसी प्रकारकी भोग-लालसा तो है ही नहीं, प्रेमास्पदके सुखकी सम्भावनासे ही उसमें मिलनकी इच्छा उत्पन्न होती है; क्योंकि इसीमें उसका सुख समाया है। परंतु यदि मिलनमें स्मृति-सुखका नाश होता हो तो प्रेमी मिलनकी वाञ्छा नहीं करता। वह तो दिन-रात स्मरण-सुखमें ही डूबा रहना चाहता है। अपना सर्वस्व—सारी ममता, सारी इच्छा-कामना-वासनाएँ—अपने प्रेमास्पद भगवान्को अर्पण करके वह उनके स्मरण-धनको ही नित्य-निरन्तर सुरक्षित रखना चाहता है। उसकी पास रहनेकी इच्छा, मिलनेकी इच्छा—सभी अर्पित हो जाती हैं प्रेमास्पदकी इच्छामें।

× × ×

प्रभु कभी अलग होते ही नहीं। वे साथ ही नहीं, रोम-रोममें व्याप्त रहते हैं, निरन्तर हृदय-सिंहासनपर आरूढ़ रहते हैं। श्रीगोपाङ्गनाओंके भावोंमें ऐसी ही माधुर्यपूर्ण परमोच्च स्थितिका संकेत है—संकेतमात्र है; क्योंकि उसका यथार्थ पूरा वर्णन तो सर्वथा असम्भव है। श्रीमद्भागवतमें वर्णन मिलता है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

(१०।४४।१५)

'व्रजकी सुन्दरियाँ धन्य हैं, जिनके चित्तपर श्रीकृष्ण सदा चढ़े रहते हैं। अतएव उनकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे भरी रहती हैं, उनकी वाणी गद्गद हो जाती है और वे दूध दुहते, धान कूटते, दही मथते, घर लीपते, बालकोंको पलनेमें झुलाते, रोते हुओंको चुप कराते, घरोंको छिड़कते एवं बुहारते—सभी समय श्रीकृष्णके गुणोंका अनुरक्त मनसे गान करती रहती हैं।'

× × ×

जगत्में चारों ओर विषय एवं भोग हैं, जो पहले अमृत-से मधुर और देवताओं-सरीखे सुन्दर लगते हैं, पर जो वस्तुतः विषपूर्ण और राक्षसवत् भयानक हैं। उनके वशमें कभी नहीं होना चाहिये। दिव्य चिदानन्दमय प्रभुका ही पवित्र स्मरण हो, उन्हींका ध्यान हो, उन्हींका सांनिध्य प्राप्त हो तथा विषय-विरक्ति और भोगोंसे उपरति निरन्तर बढ़ती रहे—यह प्रयत्न सावधानीसे करना चाहिये तथा इसीके लिये श्रीभगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये।

× × ×

हम वास्तवमें भगवान्के हाथके यन्त्र ही हैं—जिधर वे घुमाते हैं, उधर घूमते हैं। पर अहंकारवश मनुष्य अपनेको उनके हाथका यन्त्र न मानकर स्वतन्त्र इच्छा-कामना करता है, इसीसे दुखी होता है और इसीसे उसे यन्त्री भगवान्से विलग रहना पड़ता है। नहीं तो, यन्त्रीसे सदा ही उसका अति समीपका सम्बन्ध है। बस, यही होना चाहिये, यन्त्री प्रभु जिधर घुमायें, जैसे रखना चाहें, नचायें-सुलायें, हँसायें-रुलायें, घुमायें-बैठायें, नीचे डाल दें, ऊपर उठायें—जो चाहें सो करें—उसीमें उनके मङ्गलमय स्पर्शका अनुभव होता रहे, उनके स्मित-हास्यके दर्शन होते रहें। उनकी प्रेरणा ही हमारा स्वभाव, हमारे जीवनका स्वरूप बन जाय। न नरकका भय न स्वर्गकी इच्छा, न मोक्षका मनोरथ न बन्धनका दुःख। बस, उनकी मौजमें मौज। यही करना है, यही चाहना है। ऐसा हो जानेके बाद चाहना-करना-पाना कुछ रहेगा ही नहीं।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारा यह मनोरथ बहुत अच्छा है कि 'भगवान्‌के निर्मल प्रेममें कभी कमी या रुकावट तो हो ही नहीं, वह उत्तरोत्तर नया बढ़ता ही रहे। भगवान्‌के श्रीचरणोंका चिन्तन ही सुखमय—आनन्दमय है। वह चिन्तन सदा अबाधगतिसे निरन्तर चलता रहे।' मैं भी हृदयसे यही चाहता हूँ। प्रभु तुम्हारी सच्ची चाह अवश्य पूरी करेंगे। तुम्हारा लक्ष्य परम श्रेष्ठ है तथा मनोरथ और भी उत्तम। तुम्हारे योग्य, बस यही कार्य है; उसे आनन्दपूर्वक करते रहो।

× × ×

मनमें सांसारिक—इहलोक या परलोकके किसी भी सुखकी कामना नहीं करनी चाहिये। केवल भगवच्चरणोंकी प्रीति ही जीवनका उद्देश्य होना चाहिये और यह भगवत्प्रेम ही जीवन बन जाना चाहिये। रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥ (२।२०४)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने जाते हैं। कर्मी, विषयी, मुमुक्षु—सब इन्हींकी चाह करते हैं। पर तुलसीदासजी कहते हैं, चाहते हैं—'जन्म कितने ही हों, पर प्रत्येक जन्ममें रामपदमें मेरी रति रहे'—

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥

(विनयपत्रिका १०३)

प्रेमियोंकी यही स्थिति होती है। अर्थ-कामकी तो बात ही क्या, वे मोक्ष भी नहीं चाहते। वे केवल भगवत्प्रीतिके ही भिखारी, इसीके धनी होते हैं तथा उसीको अपना स्वभाव, उसीको ही अपना जीवन मानते हैं। अपनेको इसी आदर्शके अनुसार बनानेकी अनन्य इच्छा तथा चेष्टा करनी चाहिये। यही परम पुरुषार्थ है।

× × ×

सचमुच तुम्हारा लिखना ठीक है—'संसारमें सुख है ही नहीं।' जिनको दूसरे लोग सुखी समझते हैं, वे भी दुःखकी आगसे जलते रहते हैं। संसारमें सुखकी आशा ही भ्रान्ति है; क्योंकि संसारका प्रत्येक पदार्थ अपूर्ण तथा अनित्य है। सुख—सच्चा सुख एकमात्र नित्यसुख-परिपूर्णतम-सुखस्वरूप भगवान्‌में है, जो बाहरकी अनुकूल या प्रतिकूल, किसी भी स्थितिसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। यहाँकी भीषण-से-भीषण परिस्थिति भी उस सुखको जरा भी कम नहीं कर सकती और यहाँका बड़े-से-बड़ा सुख भी उस सुखके सामने नगण्य रहता है। वह सुख ही भगवदानन्द है, जो मन-इन्द्रियोंसे परे है, मन-इन्द्रियोंके अनुभवमें आनेवाले विषय-सुखसे सर्वथा विलक्षण और अतीत है। दिव्य मन तथा भगवदर्पित साधनोंके द्वारा ही उसकी उपलब्धि होती है। वह सुख दिव्य, पूर्ण, नित्य, चिन्मय, इन्द्रियातीत, संसारके प्राणि-पदार्थोंके द्वारा अप्राप्त, अप्राप्य तथा केवल भगवत्स्वरूप होता है। वह सुख सदा हमारे पास है, हमारी सम्पत्ति है, हमारा स्वरूप है; क्योंकि भगवान् हमारे हैं। उस सुखसे वह कभी वञ्चित नहीं होता, जो भगवान्‌को अपना तथा अपनेको भगवान्‌का मानता है। उस सुखमें वासना-कामनाकी गंदगीको जरा भी स्थान नहीं रहता। वह मधुर होते हुए भी परम पवित्र होता है। संसारके रागसे रहित दिव्यरसके रसिक ही उस प्रेमस्वरूप सुखमें परिनिष्ठित होते हैं। इसीका संकेत करते हुए महात्मा गोकर्ण भागवत-माहात्म्य (अ० ४।७९) में कहते हैं—'वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।—वैराग्य-रसके रसिक होकर भक्तिनिष्ठ हो जाओ।'

(पुराने पत्रोंसे संगृहीत)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानका रहस्य

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)

१—मनमें आये बिना कोई वस्तु भासती नहीं। मन बिना चेतनका नहीं होता। इसको फिरसे समझ लें। चेतन ज्ञानस्वरूप आत्मामें मन भासता है। मनमें वस्तु भासती है। चक्षुके द्वारा जिस वस्तुको अभी देख रहे हो अथवा जो पहलेकी देखी हुई है, वह वस्तु गन्ध, रस, रूप, स्पर्श अथवा शब्दका आश्रय हो सकती है या सबका सम्मिलितरूपसे आश्रय हो सकती है। अब आप ध्यान करनेके लिये चाहे गन्धके आश्रय एक मिट्टीके टुकड़ेको लें, रसके आश्रय जलको लें, रूपके आश्रय अग्निको लें अथवा एक पुष्प ले लें, जिसमें इन तीनोंके अतिरिक्त स्पर्श भी है, नेत्रवृत्तिके द्वारा वह पुष्प मनमें पहलेसे आया हुआ है या अब आ रहा है। चाहे कुछ भी हो, उसका रंग, रूप, आकृति, गन्ध, कोमलता, रसीलापन—सब कुछ मनमें ही भास रहा है। पुष्पके दर्शनकी क्रिया मनमें ही सम्पन्न हो रही है। अब आप मन-ही-मन बंद आँख या खुली आँख उस पुष्पको देखिये। जहाँ पुष्प दीख रहा है, उस मनमें पुष्प बिना हुए भास रहा है। इस स्थानमें इतनी लंबाई-चौड़ाईका, इस रंग-रूप-आकृतिका, इस रस-गन्धका, इस नाम-वाला पुष्प इतनी देरतक दीखता रहा—यह सब केवल कल्पना है। मनमें दीखनेवाले फूलका न देश है न काल है, न आकृति है न भार है, न गुण है न विशेषता है। आपका मन ही है, जो फूलके रूपमें दीख रहा है। अब आप फूलको ऐसी दृष्टिसे देखिये कि फूलके कण-कणमें, क्षण-क्षणमें, रश्मि-रश्मिमें मन ही है। वस्तुतः फूल नहीं है, मन ही है। जब उस फूलके बिना आपका मन रह जायगा, तब वह अपनेको आपकी चेतनतासे पृथक् नहीं दिखायेगा। साकार मन ही दीखता है, निराकार मन नहीं। निराकार मन चेतनसे अभिन्न होता है। इस स्थितिको रहने दीजिये, जबतक रहे। इसमें विषयावच्छिन्न चैतन्य और मन-अवच्छिन्न चैतन्यका भेद नहीं रहा। मनके चञ्चल होनेपर आपकी बुद्धि कहेगी कि आप चेतन हैं, आप मन हैं, आप फूल हैं, अर्थात् आपके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जो आप ध्यानमें थे, वही आप व्यवहारमें हैं। यह केवल फूलका ध्यान नहीं है, आप किसी भी विषयका इसी प्रकार अनुसंधान करके ध्यानस्थ हो सकते हैं। इसका रहस्य यह है कि जहाँ वस्तुतः सर्प न हो और दीख रहा हो तो अवधान-पूर्वक देखनेसे वह लुप्त हो जाता है और उसका अधिष्ठान रह जाता है। इसी प्रकार चेतन अथवा मनमें जो वस्तु विद्यमान नहीं है, वह सावधान होकर ध्यान देनेपर अदृश्य हो जाती है।

२. आप किसी एक इन्द्रियपर, अथवा सब इन्द्रियोंपर ध्यान दीजिये। एक ही ज्ञान स्थानभेदसे भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करता है। सभी गोलकस्थानीय हैं और वहाँ वासना-विशेषसे वासित ज्ञान ही इन्द्रियोंका काम कर रहा है। गन्ध-वासना, रूप-वासना आदि वासनाओं-के पृथक्-पृथक् होनेपर भी ज्ञान एक ही है। शीशेके रंग अलग-अलग, रोशनी एक। आप किसी भी वासनाके साथ प्रयोग करके देख लीजिये। वासनाओंका उदय-विलय होता है। वे अलग-अलग होती हैं। ज्ञान एक है। किसी वासनाको भी इतने गौरसे देखिये कि उसमें ज्ञान दिखे, ज्ञानसे अलग वासना न दिखे। दक्षिणाक्षिमें पुरुषका दर्शन कीजिये, अर्थात् इन्द्रिय-गोलक मत देखिये, तदुपाधिक ज्ञान देखिये। गोलक, वासना, वृत्ति—ये सब ज्ञानमात्र ही हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभी इन्द्रियोंकी यही दशा है। वे ज्ञानमात्र हैं। आप ज्ञानमात्र हैं। इन्द्रियोंका अलग-अलग दीखना बंद। केवल आप। ध्यानकालमें ही नहीं, व्यवहार-कालमें भी आप ही तत्तत् इन्द्रियों और उनके विषयोंके रूपमें भास रहे हैं।

३. दैहिक जीवनकी दृष्टिसे ही अन्तःकरण-बहिःकरणका भेद होता है। तात्त्विक जीवनमें इनका कोई सत्त्व-महत्त्व नहीं है। संस्क्रियाका नाम चित्त, विक्रियाका मन, अहंक्रियाका अहंकार और प्रक्रिया-का नाम बुद्धि है। इनको क्रमसे खजाना, संकल्प, मैं-पना और निश्चय भी कह सकते हैं। यह समूचा 'अन्तःकरण'के नामसे प्रसिद्ध है। जब आप परमार्थका कोई आकार मनमें बनाते हैं, बुद्धिमें उसका निश्चय करते हैं, वह मैं ही हूँ—ऐसा सोचते हैं या शान्त होकर बैठ जाते हैं तो ये चारों स्थितियाँ अन्तःकरणकी ही होती हैं। ये चेतनसे प्रकाशित हैं, अर्थात् आप इनके द्रष्टा-साक्षी हैं। आपको द्रष्टा-साक्षी बनना नहीं है, होना भी नहीं है, केवल समझ लेना है कि आप असङ्ग-उदासीन, कूटस्थ-तटस्थ हैं। न आपको अन्तरमें घुसना है, न थोड़ी देरके लिये निष्क्रिय होना है, न दृश्यको देखने लगना है। ये सब अन्तर थोड़ी देरतक हैं और दृश्य तो आपकी दृष्टिकी चमक है। आप देखिये, कोई वस्तु ही नहीं है, दृष्टि ही है। जिस अन्तःकरणके पेटमें सब कुछ प्रतीत होता है, उसमें तो संस्कार-युक्त ज्ञान-रश्मियोंके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं है। वह अन्तःकरण-रूप फिल्म आपमें आपसे ही प्रकाशित है। वस्तुतः आप ही हैं। अन्तःकरण और अन्तःकरणस्थ ईश्वर, जीव एवं देश-काल-द्रव्यात्मक जगत् बिना हुए ही भास रहे हैं। गम्भीरतासे देखनेपर फिल्म बिखर जायगी, केवल चेतन रहेगा; क्योंकि वह चेतनके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अन्तःकरणकी फिल्ममें ही देश-काल-वस्तु—सब हैं, चेतनमें नहीं। आप स्वयं अखण्ड चेतन हैं।

४. अच्छा, आप इसपर दृष्टि डालिये कि आप अन्तःकरणके द्रष्टा उससे पृथक् हैं। अब यह देखिये कि अन्तःकरण और आपके बीचमें तीसरी कौन-सी वस्तु है। वह अन्तःकरणका अभाव है। वह भी दृश्य है। एक कार्यरूप—दृश्यरूप है, एक बीज-विशिष्ट कारणरूप दृश्य है। अन्तःकरणमें जो चेतन है, वह 'जीव' है। अन्तःकरणाभावमें जो चेतन है, वह 'ईश्वर' है। आप भाव-अभाव दोनोंके ही द्रष्टा हैं। असलमें ये बीज और अङ्कुर क्या हैं? अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य और अन्तःकरणाभावावच्छिन्न चैतन्यमें भेद ही क्यों है? आप स्वयं साक्षी-चैतन्य हैं इस भेदका कारण आपका अपनी ब्रह्मताका अज्ञान ही है, अर्थात् आप ही अभावावच्छिन्न 'ईश्वरचैतन्य' हैं और भावावच्छिन्न 'जीवचैतन्य' हैं। चैतन्यमें अवच्छिन्नता-अनवच्छिन्नताका भेद नहीं है। अपने स्वरूपके ज्ञानमें भेदका लोप हो गया। ज्ञान भानका विरोधी नहीं है, भ्रमका विरोधी है। भेद और उसके अभावको भासने दीजिये। आपकी समाधि अखण्ड है, सहज है। आपके सामने सब केवल भास रहे हैं। आप अद्वय तत्त्व हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
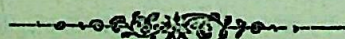
गीताका भक्तियोग—७

(पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा की गयी गीताके बारहवें अध्यायकी आनुपूर्वी विस्तृत व्याख्या)

[गताङ्क पृष्ठ ११४८ से आगे]

श्लोक

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

भावार्थ

भगवान् कहते हैं—'अर्जुन ! यदि तू कर्ममात्र मेरे लिये ही करनेमें भी असमर्थ है तो तेरे लिये यह आवश्यक नहीं कि तू यही साधन करे । मेरी प्राप्तिका एक साधन तुझे और बतलाता हूँ । वह यह है कि तेरी क्रियाका उद्देश्य स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई, नीरोगता, अनुकूलता आदि इस लोकके और स्वर्ग-सुखादि परलोकके किसी भी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होना चाहिये । दूसरे शब्दोंमें तू कर्मजन्य फलका सर्वथा त्याग कर दे और उसकी इच्छा भी कभी मत कर । अवश्य ही यह याद रखना चाहिये कि मन, इन्द्रियों एवं शरीरपर पूरा अधिकार हुए विना कर्मजन्य फलका सर्वथा त्याग कठिन होगा। इसलिये तू आत्मवान् होकर सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्याग कर ।'

सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्याग भगवत्प्राप्तिका स्वतन्त्र साधन है । कर्मफलत्यागसे विषयासक्तिका नाश होकर मनुष्यको तत्काल ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि विषयासक्ति ही मनुष्यको बाँधनेवाली है; इसका नाश होनेके बाद भगवत्प्राप्तिमें देर नहीं लगती ।

ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें भगवान्‌ने साधक भक्तके पाँच लक्षणोंके अन्तर्गत एक लक्षण 'सङ्गवर्जितः' पदसे उसको आसक्तिसे सर्वथा रहित बतलाया है । यहाँ इस श्लोकमें कर्मफलत्यागसे भगवान् सम्पूर्ण कर्मोंके फल-त्यागकी बात कहते हैं, जो संसारके प्रति आसक्तिके त्यागसे ही सम्भव है । इस (सर्वकर्मफलत्याग) का फल इसी अध्यायके १२वें श्लोकमें तत्काल परमशान्ति, अर्थात् अपनी प्राप्ति बतलायी गयी है । मानो भगवान् यहाँ यह बतलाते हैं कि 'मेरी भक्तिके एक लक्षणको पूरी तरह धारण करनेसे भी मेरी प्राप्ति हो जाती है ।'

अन्वय

मद्योगमाश्रितः, अथ, एतत्, अपि, कर्तुम्, अशक्तः, असि, ततः, यतात्मवान्, सर्वकर्मफलत्यागम्, कुरु ॥११॥

मद्योगम् आश्रितः—(मेरे शरण हुआ) मेरे योगके आश्रित हुआ ।

दसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अपने लिये सम्पूर्ण कर्म करनेसे भगवत्प्राप्ति बतलायी । यहाँ इस ग्यारहवें श्लोकमें वे सम्पूर्ण कर्मोंके फलत्यागरूप साधनकी बात कह रहे हैं—ये दोनों ही साधन कर्मयोगके अन्तर्गत हैं । भगवान्‌के लिये समस्त कर्म करनेमें भक्तिकी प्रधानता होनेसे वह 'भक्तिप्रधान कर्मयोग' है और सर्वकर्मफल-त्यागमें केवल फलत्यागकी मुख्यता होनेसे वह 'कर्म-प्रधान कर्मयोग' है । इस प्रकार ये दोनों ही भगवत्प्राप्तिके साधन पृथक्-पृथक् हैं ।

'मद्योगमाश्रितः' पदका अन्वय 'मद्योगमाश्रितः अथैतदप्यशक्तोऽसि' के साथ करना ही उचित प्रतीत होता है; क्योंकि यदि इसका सम्बन्ध 'सर्वकर्मफलत्यागम् कुरु' के साथ किया जाता है तो यहाँ भी भगवान्‌के आश्रयकी मुख्यता होनेसे यह भी भक्तिप्रधान कर्मयोग ही हो जायगा। ऐसी दशामें दसवें श्लोकमें कहे हुए भक्ति-प्रधान कर्मयोगके साधनसे इसकी भिन्नता नहीं रहेगी, जब कि दसवें और ग्यारहवें श्लोकोंमें भगवान् भक्तिप्रधान कर्मयोग और कर्मप्रधान कर्मयोग दो भिन्न-भिन्न साधन बतलाना चाहते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी बात यह भी है कि भगवान्‌ने यहाँ ग्यारहवें श्लोकमें 'यतात्मवान्' (मन, बुद्धि, इन्द्रियोंसहित शरीरपर जिसने विजय प्राप्त कर ली है) पद भी दिया है, जिससे कर्मप्रधान कर्मयोगके साधनमें आत्मसंयमकी विशेष आवश्यकता दरसायी गयी है। कर्मप्रधान कर्मयोगमें ही आत्मसंयमकी विशेष आवश्यकता है; क्योंकि आत्मसंयमके बिना सर्वकर्मफलत्याग होना असम्भव है। इसलिये भी 'मद्योगमाश्रितः' पदका सम्बन्ध 'अथैतदप्यशक्तोऽसि' के साथ लेना चाहिये, न कि सर्वकर्मफलत्याग करनेकी आज्ञाके साथ।

अथ—(यदि)

तू

एतत्—(इसको)

अपि—(भी)

कर्तुम्—(करनेमें)

अशक्तः—(असमर्थ)

असि—(है)

ततः—(तो)

यतात्मवान्—(जीते हुए मनवाला —अर्थात् मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके सहित शरीरको वशमें रखनेवाला)।

यहाँ इस पदसे भगवान्‌ने कर्मफलत्यागके साधनमें मन-इन्द्रियों आदिके संयमकी परम आवश्यकता दिखलायी है; क्योंकि इनका संयम होनेपर फलत्याग सुगमतासे हो सकता है। यदि ऐसे साधकके मन-बुद्धि-इन्द्रियों आदिका संयम नहीं होगा तो स्वाभाविक ही विषयोंमें आसक्ति होनेके कारण विषयोंका चिन्तन होगा, जिससे उसके पतनकी बहुत सम्भावना है (गीता २। ६१-६२)।

पाँचवें अध्यायके २५ श्लोकमें—'यतात्मानः' पद तथा २६ वें श्लोकमें 'यतचेतसाम्' पद, छठे अध्यायके ७ वें श्लोकमें 'जितात्मनः' पद और इसी अध्यायके १४वें श्लोकमें 'यतात्मा' पद मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके सहित शरीरको वशमें किये हुए सिद्ध भक्तोंके लक्षणोंमें आये हैं। सिद्ध भक्तोंके मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ आदि स्वाभाविक ही वशमें रहते हैं।

इसके विपरीत अठारहवें अध्यायके ४९वें श्लोकमें 'जितात्मा' पद, चौथे अध्यायके २१वें श्लोकमें 'यतचित्तात्मा' पद मन-बुद्धि-इन्द्रियों आदिको वशमें रखनेवाले साधकोंके लिये आया है।

१३। ७ में 'आत्मविनिग्रहः' पद भी इसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ है।

सर्वकर्मफलत्यागम् कुरु (सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्याग कर)।

यज्ञ, दान, तप, सेवा और वर्णाश्रमके अनुसार जीविका तथा शरीर-निर्वाहके लिये किये जानेवाले शास्त्रविहित सम्पूर्ण कर्मोंके वाचक यहाँ 'सर्वकर्म' शब्द हैं। सर्वकर्मफलत्यागका अभिप्राय स्वरूपसे कर्मफलका त्याग न होकर कर्मफलमें ममता, आसक्ति, कामना, वासना आदिका त्याग ही है।

कर्मफलको चार भागोंमें विभक्त किया जाता है—(१) प्राप्त कर्मफल—प्रारब्धके फलस्वरूप जैसा शरीर, जो कुछ वस्तुएँ, प्राणी, धन-सम्पत्ति, जाति, वर्ण और अधिकार आदि प्राप्त है—ये सभी प्राप्त कर्मफलके अन्तर्गत हैं।

२—अप्राप्त कर्मफल—जो परिस्थिति भविष्यमें प्रारब्ध कर्मफलके रूपमें मिलती और बदलती रहेगी तथा जिसके मिलनेकी मनुष्य कल्पना कर सकता है, वह सब 'अप्राप्त कर्मफल' है।

३—दृष्टफल—वर्तमान जीवनमें किये जानेवाले नये कर्मोंका फल, जो कर्मके पश्चात् तत्काल प्रत्यक्ष मिलता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ दीखता है—वह 'दृष्ट कर्मफल' है। जैसे भोजन किया और तृप्ति हो गयी।

४—अदृष्ट कर्मफल—वर्तमान जीवनमें किये जानेवाले नये कर्मोंका जो फल कालान्तरमें इस लोकमें और परलोकमें मिलनेवाला है, जिसके भोगका विधान अभी नहीं बना है—वह 'अदृष्ट कर्मफल' है।

'सर्वकर्मफलत्याग'का अर्थ है—प्राप्त फलमें ममता न करना, अप्राप्त फलकी इच्छा न करना, दृष्टफलमें आग्रह, आसक्ति न रखना और अदृष्ट फलकी आशा, इच्छा न रखना।

कर्मफलत्यागके साधनमें कर्मोंके स्वरूपसे त्यागकी बात नहीं कही गयी है, बल्कि कर्म करना अति आवश्यक है (गीता ६। ३)। आवश्यकता है कर्मोंमें ममता, आसक्ति, कामना, वासना आदिके त्यागकी ही।

कर्मफलत्यागके साधकको अकर्मण्य नहीं होना चाहिये। भगवान्‌ने दूसरे अध्यायके ४७ वें श्लोकमें कर्मप्रधान कर्मयोगीकी बात कहते हुए—'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि' तेरी कर्म न करनेमें आसक्ति न हो'—यह कहकर साधकके लिये अकर्मण्यताका निषेध किया है।

अठारहवें अध्यायके ९वें श्लोकमें सात्त्विक त्यागके लक्षण बतलाते हुए भगवान्‌ने फल-आसक्तिको छोड़कर कर्म करनेको ही 'सात्त्विक त्याग' कहा है, न कि स्वरूपसे कर्मोंके त्यागको।

फलत्यागपूर्वक क्रियाओंको करते रहनेसे क्रिया करनेका वेग शान्त हो जायगा और फलकी इच्छा न रहनेसे कर्मोंसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा, अर्थात् साधक कृतकृत्य हो जायगा।

जिन साधकोंकी सगुण-साकार भगवान्‌में स्वाभाविक श्रद्धा और भक्ति नहीं है—व्यावहारिक और लोकहितके कार्य करनेमें ही श्रद्धा और रुचि अधिक है, ऐसे साधकोंके लिये यह साधन बहुत उपयोगी है।

दूसरे अध्यायके ४७वें श्लोकमें 'मा फलेषु कदाचन' पदोंसे, पाँचवें अध्यायके १२वें श्लोकमें 'युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा' पदोंसे, छठे अध्यायके १ ले श्लोकमें 'अनाश्रितः कर्मफलं' पदोंसे, इसी अध्यायके १२वें श्लोकमें 'कर्मफलत्यागः' पदसे, अठारहवें अध्यायके ६ठे श्लोकमें 'सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च' पदोंसे, ९वें श्लोकमें 'सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव' पदोंसे, ११वें श्लोकमें 'कर्मफलत्यागी' पदसे, १२वें श्लोकमें 'त्रिविधं कर्मणः फलम् भवति अत्यागिनाम्' पदोंसे और २३वें श्लोकमें 'अफलप्रेप्सुना' पदसे इसी भावमें कर्मोंके फलका त्याग करनेकी बात कही गयी है। इस फलत्यागके अन्तर्गत कर्मोंमें और फलमें ममता और आसक्तिका त्याग भी आ गया है।

भगवान् जहाँ भी 'कर्मफलत्याग' शब्द देते हैं, वहाँ कर्मोंमें ममता-आसक्ति और उनके फलमें ममता-आसक्तिका सर्वथा अभाव बतलाते हैं। वे जहाँ कर्मफल-त्यागकी बात कहते हैं, वहाँ वे साथ-साथ आसक्तिके त्यागकी बात भी कहते हैं; जहाँ केवल फलत्यागकी बात कहते हैं, वहाँ आसक्तिके त्यागका अध्याहार किया जाता है; क्योंकि भगवान्‌के मतमें आसक्ति और फलका त्याग पूर्णतया होनेसे ही कर्मोंसे सर्वथा सम्बन्धविच्छेद होता है। अठारहवें अध्यायके २रे श्लोकमें 'सर्वकर्म-फलत्यागम्' पद केवल कर्मफलकी इच्छाके त्यागके लिये आया है। कर्मोंमें ममता-आसक्तिके त्यागकी बात इसके अन्तर्गत नहीं आयी है। इसलिये यहाँ इस 'सर्वकर्मफलत्यागम्' पदमें वैसे पूर्ण कर्मफलत्यागका संकेत नहीं है, जैसे पूर्ण कर्मफलत्यागकी बात 'सर्वकर्म-फलत्यागम्' पदसे भगवान्‌ने यहाँ कही है। (क्रमशः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

सुख एकमात्र भगवान्‌में ही है, उन्हींको पकड़िये।

संसारमें बनना और बिगड़ना नित्य-निरन्तर चलता ही रहता है। जो चीज बनी है, वह नष्ट होगी ही, यह नियम बदलेगा नहीं; फिर भी मनुष्य इन्हींको पकड़े रहता है; इतना ही नहीं, तरह-तरहके पाप भी बटोरता रहता है। पाप होनेमें मुख्य हेतु यही है कि हमारी विषयोंमें सुखबुद्धि है। यदि विषयोंमेंसे सुखबुद्धि निकल जाय तो फिर पाप हो ही नहीं सकते। बुद्धि उलटी हो रही है, संतोंके अनुभूत वचनोंपर तथा स्वयं भगवान्‌के वचनोंपर विश्वास नहीं होता। संतलोग एक स्वरसे यह कह रहे हैं—'विषयोंको बाहर निकाल फेंको, नहीं तो मारे जाओगे; पर मन इन बातोंको सुनकर भी नहीं सुनता; क्योंकि यदि वस्तुतः सुनता होता तो फिर विषयोंके लिये कामना क्यों होती ? पर मन न माने, तो भी विषयोंका दुःखदायी परिणाम तो होकर ही रहेगा। महात्मा लोग उदाहरण देते हैं—एक संत जा रहे थे। रास्तेमें पड़ी हुई रुपयोंकी एक थैलीपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। संत बहुत जोरसे भागे। वे भागते जा रहे थे कि उन्हें रास्तेमें दो सिपाही मिले। संतने कहा—'भैया ! इस रास्ते मत जाओ; डाइन बैठी है, खा जायगी।' सिपाहियोंने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया—उनकी बात नहीं मानी। वे दोनों चलते-चलते वहाँ आये, जहाँ थैली पड़ी थी। दोनोंने सोचा—'साधु बदमाश था; वह हमलोगोंको धोखा देना चाहता था और स्वयं किसीकी सहायता लेकर इस थैलीको उठा ले जानेके उद्योगमें था।' दोनोंने रुपयोंको आधा-आधा बाँटना तय कर लिया; पर दोनों ही सोचने लगे कि 'यदि मैं अकेला होता तो सभी रुपये मुझको मिल जाते। अब क्या उपाय करूँ ?' दोनोंने ही सोचा—'यदि मेरा यह साथी किसी प्रकार मर जाय तो फिर तो सब धन मेरा ही है।' एकने सोचा—'बंदूक पास है, गोली भरी है; बस, इसीसे इसका काम तमाम कर दूँ।' यह सोचकर वह मौका ढूँढ़ने लगा। दूसरेने सोचा—'मैं शहरमें जाता हूँ, वहाँसे भोजनके लिये मिठाइयाँ लेकर आऊँ और उसीमें संखिया मिला दूँ। मैं कह दूँगा कि मैंने खा लिया, तुम खा लो।' यह सोचकर वह मिठाई लाने चला गया। इधर उसके साथीने सोचा—'बस, ठीक है, बंदूक तैयार रखूँगा; जहाँ सामने दीखा कि गोली दाग दूँगा।' उसका साथी मिठाईमें संखिया मिलाकर लौटा। इसने उसे दूरसे देखकर ही गोली दाग दी, वह बेचारा मर गया। यह आनन्दमें हँसने लगा। सोचा—'अब क्या है, अब भरपेट भोजन करके यहाँसे चल दूँ।' भोजन किया, पर भोजन करते ही संखियेके भीषण जहरसे उसके प्राण भी क्षणोंमें ही निकल गये। दोनों वहीं मरे पड़े थे, थैली ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गयी। थोड़ी देरमें संत लौटे। उन्होंने देखा और करुणाभरे स्वरमें कहा—'ओह ! इन दोनोंको ही यह डाइन खा गयी।'

यह तो कहानी है, पर असलमें संसारमें यही हो रहा है। भोगकी कामना सभीको नष्ट कर रही है। सुख पानेकी आशासे विषयोंका सङ्ग करते हैं, पर परिणाममें मिलता है—दुःख, मृत्यु। मोह इतना अधिक बढ़ गया है कि जब हम भगवान्‌को याद करते हैं, तब उनके सामने भी विषयोंकी ही माँग पेश करते हैं। हम सबकी यही स्थिति है। अतएव हमेशा यह याद रक्खें—'विषयोंमें लेशमात्र भी सुख नहीं है, सुख तो एकमात्र भगवान्‌में है।' उन्हींको पकड़ें। सब छोड़कर भी यदि उन्हें पकड़ सकें, तो अवश्य पकड़िये। बस, उनको पकड़ना है, उनमें मनको प्रवेश करा ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देना है, चाहे जिस उपायसे हो। मृत्यु आनेके क्षणतक इसीके लिये चेष्टा करें। इसीके लिये दूसरे सब काम करें।

मोह-राज्यसे ऊपर उठनेकी तैयारी कीजिये।

आप मोह-राज्यसे ऊपर उठना चाहते हैं, पर उसके लिये कुछ तैयारी करनी पड़ती है। उस तैयारी-का पूर्वरूप क्या है? इसे सूत्ररूपसे इस प्रकार समझना चाहिये—

(१) कामभर बोलनेके बाद शेष समय जागनेसे सोनेतक मशीनकी तरह जीभसे भगवान्‌का नाम लेते रहें। कम-से-कम बोलकर काम चलाया जाय, यह चेष्टा रहे।

(२) कामकी बात सोचनेके बाद बाकी समय मनकी वृत्तियाँ भी भगवान्‌के चरणोंमें लगी रहें, इसके लिये निरन्तर प्रयत्न होता रहे।

(३) जीवन-निर्वाहके लिये जो चेष्टा न्यायतः अभी हो रही है, वह हो; पर कमाईके जो पैसे आयें, उनमें ममत्व बिल्कुल न हो। वह इन-इनके भरण-पोषणमें लगे, यह आग्रह न हो। दानेके एक-एक कणपर मुहर है, अन्नका जो कण जिसके पेटमें जाना है, उसीके पेटमें ठीक विधानके अनुसार जाता है। यह ठीक है कि 'स्टेज मास्टर'ने—जगन्नियन्ता प्रभुने जिनके भरण-पोषणमें हमें निमित्त बनाया है, उनको पहला मौका देनेकी हम चेष्टा करें—चेष्टामात्र, आग्रह नहीं; पर यदि सात व्यक्ति और आ जायँ तथा आठ-दस व्यक्तियोंके लिये भी जो खाद्य-सामग्री मामूली पोषणभरके लिये थी, उसके १७ भाग कर दिये जायँ और इस प्रकार सबका पूरा भरण न होकर आधा ही भरण हो, तो भी चित्त म्लान न होकर विशेष आनन्दका अनुभव करें। ठीक समझें—उन सात व्यक्तियोंके रूपमें हिस्सा बँटानेवाले स्वयं आपके प्रियतम प्रभु ही हैं, आपकी परीक्षाके लिये आये हैं। अवश्य ही यह भी एक लीलाका ही अङ्ग है।

(४) प्रतिकूल-से-प्रतिकूल अर्थात् अत्यन्त प्रतिकूल व्यवहार करनेवालेके प्रति भी द्वेष न हो; उसके हृदयमें अपने प्राणनाथ प्रभुको देखकर मन-ही-मन हँस दें। बाहरसे यदि थोड़ी मलिनता भी दीखे तो आपत्ति नहीं, पर भीतर मलिनताका स्पर्श न होने पाये।

(५) प्रत्येक घटनामें अपने प्रियतम प्राणनाथका हाथ है, इसे भीतरसे अनुभव करें तथा यह अन्तर्हृदयसे विश्वास करें कि चाहे कोई घटना कितनी भी भयानक क्यों न हो, उसका परिणाम अनन्त मङ्गलसे भरा है।

(६) किसीसे भी रूखा नहीं बोलना है। इसका सुधार करनेके लिये इससे रूखा व्यवहार आवश्यक है, यह भाव मनसे निकाल दें। किसीको आप सुधार सकें तो मधुर शब्दोंमें ही भले सुधारें, पर कड़ाई मत करें। कड़ाई न करनेसे व्यवहार ठीक नहीं होगा—यह भ्रम है; इसे भी मनसे निकाल दीजिये।

(७) मनमें यह भाव दृढ़ करते रहें—'मेरे तो एक प्रभु ही हैं, और मेरा कुछ नहीं, कोई नहीं।' सब प्रभुका, सब प्रभुके—इस नातेसे जो सम्बन्ध निभाना हो, भले निभायें; पर स्वतन्त्र सम्बन्ध जितनी शीघ्रतासे हो, मन-ही-मन तोड़ डालिये। तोड़नेकी चेष्टा करनी ही होगी।

(८) सबसे उत्तम बात तो यह है कि प्रभुसे कुछ भी न माँगें; पर जब मन किसी बातसे व्याकुल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो जाय और नीचे गिरने लगे तथा माँगनेकी इच्छा हो जाय—कोई अभाव मालूम हो और उसकी पूर्तिकी उत्कट इच्छा हो, तब सच्चे मनसे, पूर्ण विश्वासके साथ उनके सामने ही मुँह खोलिये, और किसी भी दूसरे साधनका आश्रय मत लीजिये। सच मानिये, यदि उनसे माँगियेगा तो या तो माँगकी पूर्ति हो जायगी, या माँगकी पूर्ति हुए बिना ही आपके मनका दुःख मिट जायगा।

—और भी बहुत-सी बातें हैं; पर यदि उपर्युक्त आठ बातोंको ही आप सचमुच पकड़नेकी चेष्टा करें तो थोड़े ही दिनोंमें आपमें विलक्षण परिवर्तन हो जायगा।

मनमें प्रिया-प्रियतमको बसा लीजिये।

बात तो केवल एक ही है—'जैसे हो, जिस साधनसे हो, मनमें प्रिया-प्रियतमको बसा लें—मन प्रिया-प्रियतममें लीन हो जाय। उनके अतिरिक्त मनमें और कुछ रहे ही नहीं।' सचमुच यदि यह हो गया तो सब कुछ हो गया और यदि यह नहीं हुआ तो कुछ नहीं हुआ। एक भक्तके इस पदपर ध्यान देना चाहिये—

वृंदाबन बसि यह सुख लीजै।
सात समय की महल टहल बिनु, इक छिन जान न दीजै॥
परम प्रेम की रासि रसिक जे, तिन ही कौ सँग कीजै।
निबिड निकुंज बिहार चारु अति सुरस सुधा दिन पीजै॥
और भजन-साधनमें मिथ्या कबहूँ कान न छीजै।
दिन दुलराइ-लड़ाइ दुहुन कौं, अलबेली अलि जीजै॥

सच्ची इच्छा जाग्रत् कीजिये, काम हो जायगा।

'प्रिया-प्रियतममें हार्दिक प्रेम कैसे हो, उनके दर्शनकी उत्कण्ठा कैसे उत्पन्न हो?' इन प्रश्नोंका उत्तर कोई क्या दे। सच्ची बात यह है कि ये बातें सर्वथा श्रीकृष्णकी कृपासे ही होती हैं। यह ठीक है कि उनकी अपार, असीम कृपा प्रत्येक जीवपर निरन्तर बरस रही है; पर जीव उनकी ओर, उनकी कृपाकी ओर न ताककर दूसरी ओर ताकता है—उनकी कृपाके बदले दूसरी वस्तु चाहता है। इसीलिये वह कृपा प्रकट नहीं होती और उपर्युक्त बात मनुष्यके जीवनमें प्रत्यक्ष नहीं होती। अतः सबके लिये सर्वोत्तम उपाय है सच्चे मनकी चाह लेकर उनकी कृपाको ग्रहण करने लग जाना चाहिये, फिर अपने-आप सभी बातें हो जायँगी। सच्ची चाह हुई कि काम हुआ। आप सोचकर देखें—ईमानदारीसे मन-ही-मन विचार करके देखें—आप जिन-जिन बातोंके सम्बन्धमें संत-महात्माओंसे पूछते हैं, उन-उनको क्या आप सच्चे हृदयसे चाहते हैं? नहीं चाहते। यदि चाहते होते तो सच मानिये, आपको किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं होती, वे भाव आपको प्राप्त हो जाते। ऐसा इसीलिये होता है कि श्रीकृष्ण आपके हृदयमें ही अन्तर्यामीरूपसे वर्तमान हैं तथा आपकी प्रत्येक शुद्ध, सच्ची इच्छाको पूर्ण करनेके लिये तैयार हैं। अतः सच्ची इच्छा जाग्रत् करें। 'मेरे मनमें वैराग्य कैसे हो, प्रिया-प्रियतमकी दयाका अनुभव किस उपायसे हो, उनके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा कैसे हो'—इन बातोंकी सच्ची इच्छा जाग्रत् करें; बस, काम हो जायगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थनाका मर्म

(महात्मा गांधीके भावोंके अनुसार)

प्रार्थनाका मर्म पूछा आपने
और उसकी जरूरत पूछी—
मुझे अच्छा लगा यह,
प्रश्न मनमें आपके अच्छा जगा यह;
क्योंकि मैं तो प्रार्थनाको
धर्मका आनन्द, सुख और सार—
सब कुछ मानता हूँ।
पहचानता हूँ मैं कि यदि इस तत्त्वको
इस मर्म जीवनका बना लें
तो विषम कोई परिस्थिति
कर न पाये हमें विचलित;
और आये भी कभी दुःख एक पलको,
छोड़कर जाये हमें बलवान् पहलेसे।
लोग अपनी बुद्धिको निर्भ्रम समझकर
कभी ऐसा कह दिया करते हैं—
जीवनका, भला, भगवान्से सम्बन्ध क्या है ?
धर्मका हमसे नहीं है वास्ता कुछ !
बात कुछ ऐसी हुई यह,
जिस तरह कोई कहे—
मैं साँस लेता हूँ, मगर
इस साँसका सम्बन्ध क्या है
नाकसे या फेफड़ेसे !
बुद्धि कहिये उसे,
कहिये एक सहज प्रवृत्ति—
हम जाने-अनजाने
दिव्य कोई तत्त्व ऐसा मानते हैं
जो हमें आधार देता है, चलाता है,
कभी करता है नियन्त्रित गति हमारी,
कभी देता है दिशा मानो अँधेरेमें।
परम नास्तिक भी किसी सिद्धान्तका हामी
हुआ करता है ऐसा दृढ़
कि उसको घना सुख मिलता है उसके अनुसरणमें;

और यह जो सुख उसे मिलता है
अपने सत्यके अनुसार चलनेमें निरन्तर,
तत्त्व उसमें मात्र भौतिक ही नहीं होता।
नास्तिकका भी
परम आनन्द आखिर मानसिक है—
और भी सोचें तो मनसे परेका है,
आत्मिक है;
आत्मिक सुख अन्ततो गत्वा
सभीको चाहिये।
और मैं इसलिये कहता हूँ कि जो
भगवान्में विश्वासके कायल नहीं हैं,
धर्म वे भी मानते हैं,
धर्म माने बिना जीना
नासिकाके बिना जैसे हवा पीना।
और अब मैं दूसरी एक बात कहता हूँ—
प्रार्थना है सार जैसे धर्मका,
वह जिंदगीका भी हमारी मर्म है;
प्रार्थनामें कभी हम कुछ माँगते हैं,
या कि फिर हम लौ लगाते हैं।
कभी परमात्मासे
माँगना भी असलमें
लौ लगाना है।
याचना भी करें हम तो करें अपनी शुद्धि ही
घन अँधेरेके पड़े हैं आवरण जो
या चकाचौंधें अड़ी हैं बीचमें जो,
आत्मा-परमात्माके
सत्यको जो सामने होने नहीं देते—
उन्हींको हटानेके लिये प्रभुसे लौ लगायें,
हम जगायें तत्त्व-चिन्तनसे
जिसे मूर्च्छित किया है मोहने या दम्भने
या द्वेषने या क्रोधने,
और थोड़ेमें कहें तो अहंने जिसको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं जगने दिया है ।
जो तड़पता हो जगानेके लिये इस दिव्य लौको,
उसे फूँकनी चाहिये प्रभुके चरणमें प्रार्थना ।
किंतु करना प्रार्थना
व्यायाम कानोंका नहीं है,
जीभभर नाम रटना भी नहीं है,
प्रार्थनाका अर्थ कोई ।
राम नाम सहस्र जपिये,
लक्ष जपिये मन्त्र गायत्री;
अगर उससे नहीं मन शुद्ध होता,
हृदयकी हलचल नहीं रुकती,
नहीं थमता विचारोंका प्रबल प्रचण्ड झोंका,
गिरना बड़प्पनके अचल ऊँचे शिखरसे,
या नहीं हम भूलते हैं भान
अपनी दीनताका,
याद आते हैं हमें
प्रभु-चरणमें बैठे हुए भी
कष्ट अपने नित्यके
जो आत्माके नहीं—केवल देहके हैं,
तो हमारी प्रार्थनामें बल नहीं आया समझिये;
व्यर्थ है वह प्रार्थना, आचार केवल ऊपरी है ।
हृदय जिनमें ओत-प्रोत हुआ नहीं है,
शब्द वे निःशब्द हो जायें,
हृदयमें हो विकलता,
और हार्दिक प्रार्थनामें
आत्मा फिर लीन हो जाये,
झरे आनन्दका झरना,
विचरना बंद हो जाये विचारोंका निरर्थक ।
कभी क्षण ऐसे मिलेंगे
और फिर अनुभव-कमल ऐसे खिलेंगे—
एक क्षण भी प्रार्थनाके बिना रहना
असम्भव लगने लगेगा ।

आप कह सकते हैं सुनकर यह
कि तब तो हमें जीवनमें प्रतिक्षण
प्रार्थनामें लगे रहना चाहिये ।
है यही आदर्श सचमुचः किंतु
मोहोंसे घिरे हम
एक क्षण भी यदि किसी दिन
नियत अपनी प्रार्थनाकी घड़ीमें
तम या किरणके आवरणसे मुक्त होकर
ज्योति पा लें
तो प्रतिक्षण निरत रहकर काममें हम दूसरोंके
प्रार्थना ही कर रहे हैं ।
और फिर भी सूर्य
जैसे नियमके अनुसार
आता और जाता है,
प्रार्थनाके नियत क्षणमें
नित्य सेवासे विरत
प्रभुके चरणमें लीन हों हम ।
काम अपने प्रार्थनासे ही शुरू हों
और उनका विलय भी हो प्रार्थनामें ।
रूप क्या हो प्रार्थनाका यह अवान्तर;
आप चुप हैं
या कि कोई मन्त्र मुँहसे बोलते हैं—
यह नहीं है मुख्य;
मनकी शान्ति, निष्ठाभावना ही
मुख्य इसमें ।
चित्तवृत्ति-निरोध ऐसा—
रातको सोयें तो जैसे
लीन हुए समाधिमें हम;
और खोली आँख तो
जैसे परम आनन्दमें
विकसित हुए हैं ।

—'भारतनारी'से साभार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानसिक संतोष और शान्तिका उपाय

[दूसरोंसे तुलना करनेकी मानसिक निर्बलतासे सावधान !]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'डॉ० अग्रवालके पुत्रोंको देखो, एक-से-एक कुशाग्र और आज्ञाकारी हैं। सब-के-सब निरन्तर बिना सहारे उन्नति करते चले जा रहे हैं। कोई ट्यूशन नहीं, कोई कहनेवाला नहीं! दूसरी ओर हम-जैसे पूँजीपतिके पुत्र हैं, जिन्हें पढ़ने-लिखनेकी सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, धन-सम्पत्ति है, किंतु हमारे बच्चे पत्थरकी शिलाकी तरह जहाँ-के-तहाँ पड़े भाग्यको कोस रहे हैं। हमारे तो भाग्यमें ही ऐसे कुपुत्र बदे थे। भला, ये क्या तो अपना भविष्य बनायेंगे और क्या हमें निहाल करेंगे!'—पिताने निराशाके स्वरमें कहा।

माता भी झींक रही थी। वह अपने बच्चोंकी आवारागर्दीपर परेशान थी। खीज-भरे स्वरमें बोली, 'अब इस पड़ोसिन सरस्वतीके पुत्रको ही देखो न। उसके बेटे अनिलने व्यापारमें कितनी तरक्की कर ली है। मामूली हैसियतके घरके होते हुए आज वारे-न्यारे कर दिये हैं। वाह! कैसी शानदार कोठी बनायी है। उसकी शान ही निराली है, स्कूटरपर बैठा फिरता है। घरमें लक्ष्मीकी कृपा है। दूसरी तरफ हमारे साहिबजादे हैं, जिनकी दूकानपर ग्राहक भूलकर भी नहीं आता। शामतक जो बिक्री होती है, उसमें दूकानका किरायातक नहीं निकाल पाते!'

आप इस प्रकार अपने बच्चोंकी तुलना दूसरोंसे करके दुखी और असंतुष्ट रहते हैं। यह तुलना आपको कोई लाभ नहीं देती, उल्टे आपकी उत्पादक और सृजनात्मक शक्तिको क्षीण करती है। इस तुलनासे पैदा हुई परेशानीके नाना रूप हो सकते हैं—

अमीरोंके सङ्गमें रहती हुई रईसीका स्वप्न देखती हुई गरीबकी पत्नी कहती है, 'कैसा फूटा भाग्य है मेरा! मैं सारे दिन घरका काम-काज, झाड़ू-बुहारू करती रहती हूँ, बच्चोंकी चिल्ल-पों सहती हूँ, जब कि लाला हरदयालकी पत्नी आनन्दपूर्वक पंखेके नीचे बैठी बस, नौकरोंपर हुक्म ही चलाती रहती है। उसके मुँहसे आज्ञा निकली कि पूर्ण हुई। यहाँ बर्तन माँजनेका काम भी खुद ही करना पड़ता है।'

आप अपनी तुलना ऊँचे और अमीर व्यक्तियोंसे करते हैं, तो अपनेको नीचा और साधनहीन पाकर परेशान हो उठते हैं। आप अपनी पत्नीकी तुलना दूसरोंकी अपेक्षाकृत अधिक पढ़ी-लिखी, सुन्दर पत्नीसे कर बैठते हैं। फिर उसे मामूली और गिरी हुई पाकर असंतुष्ट और विक्षुब्ध होते हैं, 'कमलाशंकरकी पत्नी एम्० ए० पास है, संगीतमें पारंगत है, क्लब-गोष्ठीमें कोकिलकी तरह कुहकती रहती है, जब कि हमारी पत्नी तो बस, भोजन पकाना, वस्त्र धोना और घर-गृहस्थीका मोटा काम ही जानती है। ऐसी गाँवकी औरतके साथ रहकर तो जिंदगी बरबाद हो गयी है।' यह तुलना आप मन-ही-मन करते रहते हैं और मनमें परेशान बने रहते हैं।

तुलना करनेसे जो परेशानी पैदा होती है, उसका अन्त नहीं। एक व्यापारी दूसरेके व्यापारको श्रेष्ठ बतलाता है। एक विभागका कर्मचारी दूसरेके विभागको अच्छा बतलाता है। इन्जीनियर कहता है कि आजकल डाक्टरोंकी चाँदी है। उधर डाक्टर कहते हैं कि हमारी जिंदगी तो बस कशमकश और भाग-दौड़से भरी है। सारे दिन मरीज खोपड़ी खाये जाते हैं। हमसे तो ये अध्यापक, प्रोफेसर अच्छे हैं, जो आरामसे दो-दो महीनेकी छुट्टियाँ उड़ाते हैं। बस, तीन घंटे विद्यार्थियोंको बहकाया और मौज मारी। वकीलोंकी ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी होती चली जा रही हैं। धनके अटूट महल खड़े हो गये हैं। वकीलोंका पेशा सबसे अधिक आमदनीका पेशा है। उधर वकीलोंकी शिकायत है, 'धत् तेरी वकालतकी! सारे दिन अपराधियोंसे ही पाला पड़ा रहता है। चोर, डकैत, कातिल, खूनी, आवारा, जेबकट, बदमाश सभी इर्द-गिर्द रहते हैं। सारे दिन मुकदमोंके सबूत इकट्ठे करने और गवाहोंको सिखानेमें ही बीत जाता है। कचहरियोंमें सारे दिन दौड़-धूप करते फिरना पड़ता है। कभी पुलिसवालोंकी, तो कभी अदालतमें काम करनेवाले छोटे-छोटे कर्मचारियोंकी जी-हुजूरी करनी पड़ती है। वकालत तो सबसे गया-बीता पेशा है।

इस प्रकार किसी-न-किसी दृष्टिसे, किसी-न-किसी रूपमें हम अपनेसे बढ़े-चढ़े लोगोंसे अपनी तुलना करते हैं। उन्हें अच्छा और बेहतर समझते हैं। उनके जीवनका उजला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहलू ही देखते हैं और अपनेको छोटा, साधारण या गिरा हुआ पाकर विक्षुब्ध रहते हैं।

अपनेसे ऊँची स्थितिवाला आदमी ही हमारी उत्सुकताका केन्द्र रहता है। उसके भी जीवन और व्यवसायका हम उजला पहलू ही देखते हैं और अपनी मजबूरियों और बेबसीको पाकर मन-ही-मन कष्टका अनुभव करते हैं। तुलनामें अपने-आपको गिरा हुआ पाकर अपने-आपको अपूर्ण और दीन-हीन समझते रहते हैं।

यह तुलना करनेकी भावना हमारे व्यक्तित्वमें हीनत्वकी भावनाके काँटे बो देती है। जो तुलना आपको पङ्गु कर दे, विकासके मार्ग ही रोक दे और कार्यकुशलता ही नष्ट कर दे, वह अहितकर है। यदि तुलना आपका उत्साह, क्रियाशीलता, ऊँचा उठनेकी कामना, बड़ा बननेका चाव या तरक्की करनेकी क्षमताको नष्ट करती है, तो वह हर प्रकारसे त्याग देनेयोग्य है। यह मनुष्यको हतोत्साह करनेवाली चिन्ता है। बार-बार अपनेको नीचा गिरानेवाली तुलनासे आपकी तमाम उच्च शक्तियाँ मारी जाती हैं।

हीनत्वकी भावनाको जगानेवाली और न उन्नति करने देनेवाली तुलनासे बचिये। यदि आप सदा अपनेसे बढ़े-चढ़े व्यक्तियोंसे ही तुलना करते जायँगे और किसी-न-किसी दृष्टिसे उन्हें अपनेसे सदा श्रेष्ठ ही मान हतोत्साह होते जायँगे, तो एक दिन जहाँ-के-तहाँ ही पड़े रहेंगे। जिंदगीमें आगे न बढ़ने पायँगे। मनको परेशानकर जहाँ-की-तहाँ खड़ी रखनेवाली तुलनासे बचिये।

यह समाज प्रयत्न करनेवालोंके लिये खुला है। जो किसी भी क्षेत्रमें तरक्की करना चाहते हैं, उनके लिये सैकड़ों साधन जुट सकते हैं। दूसरोंको बड़ा समझते रहनेमात्रसे अपने प्रयत्नोंको ढीला करनेकी आवश्यकता नहीं है।

कोई किसी दृष्टिसे आगे है, तो दूसरा किसी अन्य दृष्टिसे। एक शारीरिक शक्तिमें बढ़ा-चढ़ा है, तो दूसरा मानसिक ताकतमें आगे है। एक आर्थिक दृष्टिसे उन्नति कर रहा है, तो दूसरा नैतिक और आध्यात्मिक तरक्की कर रहा है, तीसरा व्यापारमें बढ़ता जाता है। सबके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। साधन पृथक्-पृथक् हैं। आदर्श अलग-अलग हैं।

तुलनासे परेशान होनेकी हीन प्रवृत्तिसे बचनेके लिये एक बहुमूल्य स्वर्णसूत्र है। इसमें इङ्गित अनुभवसे लाभ उठाना चाहिये—

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥

अर्थात् सृष्टि-रचयिता ईश्वरका स्वभाव मनुष्योंमें पाये जानेवाले सब गुणों अथवा सब विशेषताओंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है। वे कहीं कुछ रखते हैं, तो कहीं कुछ और! कहीं एक गुण है, तो कहीं उसके विपरीत दूसरा ही! सबके गुण, कर्म, स्वभाव, रुचि, प्रवृत्ति, अलग-अलग! कहींपर भी ये सब गुण एक ही जगह इकट्ठे नहीं हैं।

अतः आप तुलना करके अपनेको दीन-हीन समझ परेशान न हुआ करें। दूसरोंसे अपनी तुलना करें, तो उन्नतिकी बात सोचें। उनके समान बननेका प्रयत्न करें।

यदि कोई व्यापारी अपनेसे ऊँचे व्यापारीके गुण सीखनेकी दृष्टिसे, या कोई विद्यार्थी अपनेसे कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थीसे, एक कारीगर अपनेसे कुशल कारीगरसे कुछ अच्छी ऊँची लाभदायक बात सीखनेके लिये तुलना करता है, तो वह लाभदायक है।

श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने बड़े ही महकते हुए शब्दोंमें जीवनका नवनीत प्रकट कर दिया है—'जीवनका सच्चा पथ यह नहीं है कि जो आज हमें प्राप्त नहीं है, उसके लिये रोते रहें। जीवनका सच्चा पथ यह है कि प्रयत्न या योगसे जो हमने पा लिया है, उसे पहिचानें, उसे अपने अनुकूल बनायें, उसमें रस लें और संतोषका सुख पायें।'

'सब कुछ अधूरा हमें मिला, सब कुछ पूरा दूसरोंको'—यह मृगतृष्णा है, जीवनका दिग्भ्रम है।

जीवनका सबसे बड़ा सत्य है—अपूर्णता।

मैं, तुम, वे, सब अपूर्ण, अपनेमें सब अधूरे; इस अपूर्णताका समन्वय, इस अधूरेपनका सदुपयोग ही जीवनकी सबसे बड़ी कला है।

अपनेसे ऊँचों, बड़ों, अमीरोंसे तुलना करके आत्महीनता और ईर्ष्याकी अग्निमें मत जलिये। ऊपर चढ़ने और अच्छा बननेकी कोशिश कीजिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिताका कर्ज

(लेखक—श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

राजस्थानमें चूरू एक पुराना कस्बा है। आजसे सवा सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिष्ठित वैश्य-परिवार रहता था, जिसका मालवामें बड़े पैमानेपर व्यापार था। जब अफीमको लेकर ब्रिटेन और चीनका युद्ध हुआ तो इनको घाटा लग गया, काम बंद हो गया और देनदारी रह गयी।

इसके बाद परिवारके स्वामी सेठ उजागरमलको घरके बाहर निकलते कभी नहीं देखा गया। कभी-कदाच कोई आदमी उनसे मिलने भी गया तो उनका चेहरा नहीं देख पाया; क्योंकि वे अपना मुँह चद्दरसे ढके रहते थे। इसी शोकसे छोटी उम्रमें ही उनका देहान्त हो गया। परिवारमें उनकी विधवा पत्नी और १३ वर्षका पुत्र रामदयाल रह गये।

गहना और जमीन-जायदाद बेचकर उजागरमलने अपना बहुत-सा कर्ज तो चुका दिया, फिर भी मरनेके समय कुछ कर्ज बाकी रह गया था। अन्तिम समयमें उन्होंने पत्नी और पुत्र रामदयालको एक कागज दिया, जिसपर कर्जदारोंके नाम और रकमें लिखी थीं। पुत्रको उनका अन्तिम आदेश था कि मेरी आत्माको तभी शान्ति मिल पायेगी, जब किसी दिन तुम यह कर्ज ब्याजसमेत चुका दोगे।

दो वर्ष बाद रामदयालका विवाह हुआ। इस मौकेपर विधवा माँने थोड़ा-बहुत कर्ज लेकर पूरी बिरादरीको न्यौता दिया। बहूकी अगवानीके समय किसीने ताना कस दिया कि बापका कर्जा तो चुका ही नहीं और विवाहमें इतनी धूमधाम है! किशोर रामदयालको यह बात चुभ गयी। विवाहके कंगन-डोरे खुल भी नहीं पाये थे कि उसने सुदूरपूर्व असम जानेका निश्चय कर लिया। माँ और पड़ोसियोंने रामदयालको बहुत समझाया कि कुछ दिन ठहर जाओ और थोड़े बड़े हो जानेपर चले जाना। पर उसने किसीकी भी न सुनी और रोती-बिलखती माँ और बालिका बहूको छोड़कर, कुछ लोगोंके साथ जो पूर्वकी यात्रापर जा रहे थे, वह भी चल पड़ा।

उस समय असमकी यात्रामें तीन-चार महीने लग जाते थे। ट्रेन कलकत्तेसे कानपुरतक ही बनी थी। राजस्थानसे कानपुर जानेमें २५-३० दिन लगते थे। कलकत्तासे नौकामें बैठकर असम जानेमें भी डेढ़-दो महीने लग जाते थे। रास्तेमें पद्मा नदी पड़ती थी, जिसके तेज बहावमें कभी-कभी नौकाएँ डूब भी जाती थीं। इसके सिवा जल-दस्युओंका भी डर बना रहता था, इसलिये कई आदमी एक साथ मिलकर और पूरा बंदोबस्त कर असम-यात्रापर जाते थे। एक बार जाकर लोग ८-१० वर्षकी मुसाफिरी करके लौटते थे। रास्ते इतने संकट-मय थे कि बहुत-से लोग तो वापस ही नहीं आ पाते थे। यात्राके समय रामदयालके पास संबल-स्वरूप एक धोती, एक लोटा, कुछ चना-चबैना था और था दृढ़ विश्वास एवं हिम्मत।

असमकी आबहवा बहुत ही नम रहनेके कारण, वहाँ मलेरिया और काला-ज्वरका प्रकोप बना रहता था। पर व्यापारमें गुंजाइश थी, इसलिये लोग पानीकी जगह चाय पीकर रहते थे। बुखार हो जानेपर दवाइयाँ खाते रहते थे। कुनैनका तो उस समयतक आविष्कार ही नहीं हुआ था।

रामदयालको राजस्थानसे तिनसुकिया (असम) पहुँचनेमें चार महीने लग गये। वहाँ जाकर उसने कपड़ेकी फेरीका काम शुरू किया। सुबह कंधेपर कपड़े लादकर गाँवोंमें निकलता और शामको एक या दो रुपया कमाकर अपने डेरेपर वापस आ जाता।

इस समयतक वहाँ मारवाड़ियोंकी कुछ दूकानें हो गयी थीं और यह आम-रिवाज था कि नया आया हुआ कोई भी व्यक्ति निस्संकोच उनके बासेमें खाना खा सकता था। जब अच्छी कमाई होने लगती तो अपनी अलग व्यवस्था कर लेता। इसके सिवा पहलेसे बसे हुए मारवाड़ियोंसे व्यापारमें भी वाजिब सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहता था। रामदयालको इनका पूरा सहयोग मिला।

कड़ी मेहनत और ईमानदारीसे दस वर्षोंमें उसने इतना रुपया कमा लिया, जिससे वह अपने पिताका पूरा कर्ज ब्याजसहित चुका सका। वर्षमें एक-दो बार किसी पड़ोसीसे लिखाया हुआ माँका पत्र मिल जाता, जिसमें देश आनेका तकाजा रहता था। उन दिनों बेचारी पत्नी तो पतिको पत्र देनेका साहस ही नहीं कर सकती थी।

इसी प्रकार ६-७ वर्ष और व्यतीत हो गये। इस बीचमें रामदयालके पास ४०-५० हजारकी पूँजी हो गयी और अपनी निजकी दूकान भी। एक दिन अचानक ही पत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिला कि उसकी माँ सख्त बीमार है और अन्तिम समयमें उसको देखना चाहती है।

अपनी दूकानकी सारी व्यवस्था मुनीमोंको सौंपकर वह देशके लिये रवाना हुआ और जैसे आया था, उसी प्रकार तीन महीनेमें भिवानी पहुँचा। इस समयतक रेल कानपुरसे भिवानीतक बन गयी थी। असम आते वक्त तो रुपयोंके अभावमें रामदयाल अपने घर (राजस्थान) से पैदल ही कानपुरतक आया था, पर अब उसकी स्थिति अच्छी हो गयी थी, इसलिये भिवानीसे ऊँट किरायेपर लेकर वह अपने गाँवके लिये रवाना हुआ। १६-१७ वर्षके लंबे समयके बाद वह राजस्थान लौट रहा था। हरी-भरी उपजाऊ असमकी भूमिसे उसका इतना सांनिध्य हो गया था कि इस रेतीली मरुभूमिको एक प्रकारसे भूल-सा गया था। परंतु जैसे ही उसने बड़े-बड़े टीबों और उनकी चमचम करती हुई बालूको देखा तो उसे अपने बचपनके दिन याद आ गये, जब वह इनपर हम-उम्र संगी-साथियोंके साथ खेलता और लोटता था। उसका मन हुआ कि ऊँटपरसे इसी दम उतर पड़े और एक बार फिर जी भरकर इस रेतका आलिङ्गन करे।

चार दिन बाद एक सुबह जब वह अपने गाँवकी काँकड़ (किनारे) पर पहुँचा तो देखा कि कुछ व्यक्ति एक सधवा स्त्रीकी अर्थी लिये हुए जा रहे हैं। रामदयाल १६-१७ वर्षके बाद गाँव लौटा था, इसलिये न तो वह किसीको पहचानता था और न कोई उसे ही। अर्थीके साथ जा रहे लोग आपसमें बातें कर रहे थे कि इस बेचारी (मृत-महिला) ने जीवनमें देखा ही क्या ! १७ वर्ष पहले पति ब्याह होते ही परदेश चला गया, जो अभीतक वापस नहीं लौटा। एकमात्र सासका सहारा था। वह भी तीन महीने पहिले इसे सदाके लिये छोड़ गयी।

रामदयालके मनमें कुछ आशङ्का और जिज्ञासा हुई और उसने लोगोंसे पूछा तो पता चला कि यह तो उसकी अपनी पत्नीकी ही अर्थी है।

जिस वात्सल्यमयी माँ और पत्नीसे मिलनेकी आकाङ्क्षा लिये वह आया था, वे दोनों ही अब नहीं रहीं। जो कुछ शेष रहा, वह था गाँव-पड़ोसके लोगोंके कटु वचन और निन्दा-स्तुति। रामदयाल बिना किसीको अपना परिचय दिये उल्टे पैरों चुपचाप वापस लौट गया। उसका पैतृक मकान अभी भी था; परंतु सूने मकानमें जानेकी हिम्मत नहीं हुई। परंतु इतने बड़े संकटमें भी उसे सबसे बड़ा संतोष और सहारा इसी बातका था कि उसने अपने पिताका सारा कर्ज ब्याजसहित चुका दिया था।

रामदयालके पिताने उसे केवल एक कागज दिया था, जिसपर लेनदारोंके नाम और रकमें लिखी थीं। उस समय न तो स्टाम्पके कागजपर ही कर्जकी लिखा-पढ़ी होती थी और न कोई गवाह या जामिन ही होते। परंतु वे लोग सबसे बड़ी लिखा-पढ़ी और गवाह-जामिन तो ईश्वरको मानते थे और पिता-पितामहका कर्ज चुकाये बिना सार्वजनिक उत्सवोंमें भी कभी-कदाच ही शामिल होते थे। इस बातके अनेक उदाहरण मिलेंगे कि ३०-४० वर्ष बादतक पुत्र और पौत्रोंने अपने पिता और पितामहका कर्ज चुकाया है।

यही कारण है कि हालके वर्षोंतक हमारे पूर्वजोंके बिना मात्राके हरफोंमें लिखे बही-खातोंकी अदालतमें साख और इज्जत थी।

'प्रीतम ! तू मोहि प्रान तें प्यारौ'

प्रीतम ! तू मोहि प्रान तें प्यारौ।
जो तोहि देखि हियें सुख पावत, सो बड़ भागनिवारौ॥
तू जीवन-धन, सरवस तू ही, तुही दृगन कौ तारौ।
जो तोकौं पल भर न निहारूँ, दीखत जग अँधियारौ॥
मोद बढ़ावन के कारन हम मानिनि रूपहि धारौ।
'नारायन' हम दोउ एक हैं, फूल सुगंध न न्यारौ॥

—श्रीनारायणस्वामीजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इहलोककी अलौकिकता

(लेखिका—श्रीमती मदालसा देवी अग्रवाल)

यह विश्वका अद्वितीय स्वरूप है, जिसकी झलक हमें 'प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्' इत्यादि प्रार्थना-पद्यमें मिलती है। इसका मतलब है—

मैं प्रातः उस आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ, जो मेरे हृदयमें अपने-आप संस्फुरित होता है, जिसके लिये मुझे कुछ सोचना नहीं पड़ता, बल्कि जो मेरे मानस-सरोवरमेंसे अपने-आप तरङ्गित होता है। उस अजरामर आत्मतत्त्वका मैं प्रातःकालमें स्मरण करता हूँ। दूसरे शब्दोंमें मेरे हृदयमें जो आत्मतत्त्व भरा हुआ है और प्रातःकालीन आह्लादक समय-में प्रकृति माताकी प्रेरणासे जो अपने-आप तरंगित हो उठता है, उसीका मैं स्मरण करता हूँ। याने अपने मनमें ही मैं ख्याल करता हूँ—देखो, मेरे अन्तर्हृदयमें यह कैसी स्फूर्ति अपने-आप स्फुरित हो रही है, इसे आन्तरिक रूपसे कौन संस्फुरित करता होगा ?' यह सोचकर इससे प्रेरणा प्राप्त करनेका मैं प्रयत्न करता हूँ। यही 'प्रातः स्मरामि' का भावार्थ है।

परमात्माने सृष्टिकी रचना की, उसी समय सचराचर जगत्के साथ अपना आत्मसम्बन्ध कायम रखनेकी यह कैसी अद्भुत व्यवस्था कर दी है। विश्वका कोई विशिष्ट व्यक्ति अगर चाहे, तब भी परमपिता परमात्मासे वह अपनेको वियुक्त याने अलहदा रख ही नहीं सकता। यही विश्वका अलौकिक विधि-विधान है।

संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने रामचरितमानसके ६। ११६। १में बहुत ही उत्तमतासे यह समझाया है कि—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

अर्थात् विश्वका हर व्यक्ति विश्वेश्वरका ही अंश है। इसीलिये वह अविनाशी याने अजर-अमर है। परमपिता परमात्माके समान वह चैतन्यस्वरूप तेजोमय है। जो मानवमात्रकी चित्—चेतनाको सदा सचेत रखता है, वह अमल है। अर्थात्—

'तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः' के रूपमें वह 'हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्' 'स्वयं सत्यं शिवं सुन्दरम्' स्वरूप है। इतना ही नहीं, वह 'सहज सुखराशि' भी है। पुण्यभूमि माता पृथ्वीके माथेपर बढ़े हुए पापका भार उतारनेके लिये देवताओंके द्वारा सामूहिक रूपसे परमेश्वरकी जो स्तुति की गयी है, उसका वर्णन रामायणके बालकाण्डके दोहा १८५ के छन्द १में इस प्रकार आता है—

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

इसमें भगवान्की सुखदायकताका कितना सुखद स्वरूप प्राप्त होता है। इसके आगे 'मम उर सो बासी' के रूपमें भी प्रभुका स्मरण किया गया है। यहाँ 'मम उर सो बासी' जिसके सम्बन्धमें कहा गया है, वही तो 'हृदि संस्फुरदात्म-तत्त्वम्' है। उसके लिये 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' के माहात्म्य-में लिखा है—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

यानी 'जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य इस संसारके जन्म-मरण आदि बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है, उन विष्णुदेवको, जो हर व्यक्तिके हृदयमें विश्वव्यापक विष्णुरूपसे प्रति-भासित हैं, हम नमस्कार करते हैं।'

यही बात 'प्रातः स्मरामि' के आगेके तीसरे श्लोकमें इस तरहसे अभिव्यक्त होती है।

'प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।'

अर्थात् "मैं प्रतिदिन प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ उन्हें, जिनका सूर्यके समान परम उज्ज्वल वर्ण है, जो सनातन पद 'पूर्णात्पूर्णम्' की तरह परिपूर्णरूपसे सदा भरा-पूरा रहता है और जिसे 'पुरुषोत्तम' कहा जाता है।" उनको हम रोज सुबह उठते ही प्रणाम क्यों करें ? यह सवाल यहाँ उठता है। इसका खुलासा श्रीमद्भगवद्गीतामें 'पुरुषोत्तमयोग' नामक पंद्रहवें अध्यायके पंद्रहवें श्लोकमें श्रीकृष्णभगवान्ने स्वयं बहुत ही उत्तमतासे किया है। साथ ही अपना पूरा परिचय भी उन्होंने इसी श्लोकमें अच्छी तरहसे दे दिया है। वह श्लोक है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥

इसमें सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णदेवने अपने अनन्य सखा परमप्रिय अर्जुनको यह समझाया है कि 'हे मित्र ! सुन; मैं तो सबके हृदयको घेरकर सदा उसीमें रहता हूँ और वहाँ बैठा-बैठा ही सबको स्मृति, ज्ञान और विवेक देता रहता हूँ—बशर्ते कि लेनेवाला उन्हें लेनेके लिये तत्पर हो । उसको अपनी आवश्यकताके अनुसार जब जितनी स्मृति, ज्ञान या विवेककी जरूरत हो, उतना मुझसे लेनेके लिये उसे सदा तैयार रहना चाहिये । तभी वह मुझसे अपनी मनचाही वस्तुएँ जरूरतके मुताबिक हमेशा प्राप्त कर सकता है । दुनियामें मनुष्यको और सब तरहके कार्य, प्रयत्न और पुरुषार्थ तो खुद ही करने पड़ते हैं, पर जीवनके आधारभूत शाश्वत तत्त्वोंका चिन्तन करनेके लिये उसे आत्मप्रेरणा चाहिये । अनेकानेक तत्त्व-चिन्तकोंके अनुभवका आधार चाहिये । उसके लिये अन्तस्तलमें अनेक पावन स्मृतियाँ जाग्रत् होनी चाहिये । इसके बाद हर व्यक्तिको कब क्या करना उचित है, यह निश्चित करनेके लिये सारासार-विवेक भी हासिल होना चाहिये । वही मैं सबको आन्तरिक रूपसे देनेके लिये सदा तत्पर रहता हूँ ।'

यह सर्वान्तर्यामीका हम दुनियावालोंके लिये कितना महत्त्वपूर्ण आश्वासन है । हर इन्सानको भगवान्‌का यह सहयोग अपने-आप मिलता रहे, इसकी उत्तम व्यवस्था करनेके लिये ही पार्थसारथि श्रीकृष्ण सबके अन्तरमें नित्य-निरन्तर निवास करते हैं । इस बातको हम अच्छी तरह समझ लें तो हमें अपने जीवनमें कभी कोई दुविधा या असुविधा हो ही नहीं सकती ।

उपर्युक्त श्लोकके अगले दो चरणोंमें भगवान् अपना परिचय भी खुद देते हैं कि 'हमारे जितने भी वेद हैं, वे विश्वके आधारभूत ज्ञानभण्डारसे भरे हुए आदि ग्रन्थ हैं । वे मुझे जाननेके लिये ही बने हैं । मैं ही उनका प्रतिपाद्य विषय हूँ । मेरा ही प्रतिपादन करनेके लिये वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है । उन वेदोंको जाननेवाला भी मैं हूँ और उनके रहस्यका उद्घाटन-कर्ता भी मैं ही हूँ ।'

भगवद्गीताके इस एक श्लोकमें परमात्माने मानवको कितना अपूर्व ज्ञान और अपना महान् परिचय भी दे दिया है ।

अभी हालमें ही अहमदाबाद नगरके वेद-मन्दिरमें मानवाधिकारके सम्बन्धमें विचार-विनिमय करनेके लिये एक महत्त्वपूर्ण सभा हुई । गुजरात प्रदेशका उद्घाटन जिन सेवा-मूर्ति पूज्य श्रीरविशंकर महाराजके कर-कमलोंसे हुआ था, वे इन दिनों 'गुजरात राज्य बँगला देश राहत समिति'के अध्यक्ष भी हैं । उनके एक इशारेपर मानव-सेवाके लिये सैकड़ों सेवक तत्काल खड़े हो जाते हैं और लाखोंका चंदा सहजमें ही प्राप्त हो जाता है । वे स्वयं इस सभामें उपस्थित थे ।

अखिल भारत साधुसमाजकी गुजरात शाखाके अध्यक्ष स्वामी श्रीमनुवर्यजी, पू० माँ जानकी देवीजी बजाज, अहमदाबादके प्रतिष्ठित व्यापारी-वर्गके श्रद्धावान् प्रतिनिधि, सूचना-प्रसारणके दिग्दर्शक, राज-भवनके भक्तिमान् सचिव भी वहाँ आये थे । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्यापक भावनाके विरुद्ध आज बँगला देशमें जो सामूहिक नर-संहार शुरू हुआ है, उसको सारे विश्वके विवेकी विद्वान् मिलकर निषिद्ध क्यों नहीं साबित करते ?—यह माँ जानकी देवीजीका सवाल था ।

इसपर कई महीनोंसे ही गहराईसे विचार-विनिमय हो रहा था । आज सुबह उसमेंसे नवजात पङ्कजकी भाँति एक परम पवित्र महामन्त्रका प्रादुर्भाव हुआ, जो इस प्रकार है—

'मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है ।' और वह दुनियाँके हर मनुष्यको प्राप्त होना ही चाहिये । यह संकल्प भी उसके साथ ही जाग्रत् हो उठा । भारतके परमश्रेष्ठ वेदाचार्य प्रज्ञाचक्षु श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराजने सभामें एक बड़े मार्केकी बात यह बतायी कि श्रद्धेय रविशंकर महाराजने वेदोंका महत्त्व दो शब्दोंमें ही समझा दिया है कि 'वेद सृष्टिका संविधान है ।' दरअसल वेदोंका इससे बड़ा माहात्म्य और क्या हो सकता है ।

सृष्टिके ऐसे संविधान-स्वरूप वेदोंके आधारपर ही श्रीकृष्णभगवान्‌को अर्जुनके सामने अपना आत्म-परिचय प्रस्तुत करना पड़ा । ऐसी अपरम्पार महिमा है वेदोंकी । उसे जाननेवालेको जाननेके सम्बन्धमें श्रीतुलसीदासजीने रामायणमें लिखा है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
(२ । १२६ । २)

मतलब 'तुमको वही जान सकता है, जिसे तुम अपनी जानकारी करा देते हो और तुमको जानते ही वह तुममें एकाकार हो जाता है ।'

यह सारा राज-वैभव इहलोकका ही है । गीताजीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१५वें अध्यायमें समूचा इहलोकका ही वर्णन तो किया गया है। उसके अन्तिम श्लोकोंमें सारभूत बात यह बतायी गयी है कि "दुनियामें मुख्य दो पुरुष हैं—एक है क्षर और दूसरा है अक्षर, वह जो ध्रुवके समान सदा स्थिर ही है। अब जो परमात्मा है, वह है तीसरा उत्तम पुरुष। इसीसे वेद और वेदोंको जाननेवाले लोग मुझे 'पुरुषोत्तम' कहते हैं। जो अपने मनके मोहको दूर करके यह जान लेता है कि 'मैं पुरुषोत्तम हूँ', वह सर्वज्ञ है। वह सर्वभावसे सर्वभूतोंमें मुझे ही देखता है और मेरा ही भजन करता है।" इस दृष्टिसे राष्ट्रपिता बापूजीके द्वारा प्रकाशित आश्रम-भजनावलीकी प्रातःकालीन प्रार्थनाके प्रथम तीन श्लोक बड़े ही महत्त्वके हैं, जिनमें 'प्रातः स्मरामि', 'प्रातर्भजामि' और 'प्रातर्नमामि' की भावना क्रमशः अभिव्यक्त हुई है।

यही इहलोककी अलौकिकता है, जहाँ सर्वान्तर्यामी स्वयं हमारे जीवनके संरक्षक होकर हमारे ही हृदय-भवनमें विराजमान रहते हैं। वे हमारे मन-मन्दिरके आराध्य हैं और वे ही इहलोकमें हमारे सर्वोत्तम अतिथि भी हैं; क्योंकि जिनके आवागमनकी तिथिका हमें जरा भी पता नहीं होता, वे ही तो हमारे सम्माननीय महान् 'अतिथि' कहलाते हैं, जिनकी सेवाका वेद हमें उपदेश देते हैं—'अतिथिदेवो भव।' उनका आदरातिथ्य हम जितना कर सकें, उतना ही हमारा उच्चतम भाग्योदय होता है और उसीसे हमारा महत्तम मानव-जीवन धन्य हो सकता है। तभी तो शास्त्रोंने हमारा गुण-गौरव इस प्रकार गाया है कि 'न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्—मानवसे बढ़कर दुनियामें और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है।' यही है हमारी इहलोककी अलौकिकता और यही है हमारा इहलोकका राजवैभव।

मौसल-लीला तथा भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तर्धान-लीला*

(लेखक—डॉ० श्रीराधागोविन्द नाथ)

मौसल-लीला—श्रीमद्भागवतके ११ वें स्कन्धके पहले और तीसवें अध्यायमें, विष्णुपुराणके ५। ३७ अध्यायमें एवं महाभारतके मौसलपर्वमें 'मौसल-लीला'का वर्णन है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादवोंने पिण्डारक तीर्थमें यज्ञका अनुष्ठान किया। विश्वामित्र, कण्व, असित आदि मुनिगण भी यज्ञस्थलपर गये थे। जब वे लोग यज्ञस्थलसे अपने-अपने आश्रमको वापस जा रहे थे, तब मार्गमें यदुकुलके दुर्विनीत बालकवृन्दने जाम्बवतीके पुत्र साम्बको गर्भवती स्त्रीके वेषमें सजाकर मुनियोंके सामने उपस्थित कर जिज्ञासा की कि 'इसके गर्भसे पुत्र होगा या कन्या होगी?' मुनिगणने बालकोंकी धृष्टतासे कुपित होकर कहा कि 'इससे यदुकुलनाशक मूसल उत्पन्न होगा।' बालकोंने साम्बके उदरपर लपेटे हुए वस्त्रोंको उतारकर देखा कि वस्त्रोंके भीतर सत्य ही एक मूसल है। उन्होंने डरकर उग्रसेनके पास जा सब बात प्रकट कर दी। उग्रसेनने श्रीकृष्णको न बताकर मूसलका चूर्ण कराया और शेषमें मूसलमेंसे जो बचा, उसको चूर्णसहित समुद्रमें फेंकवा दिया। फेंकते ही मूसलके अवशेष लोहखण्डको एक मत्स्य निगल गया एवं चूर्ण तरंगोंके आघातसे किनारे आकर संचित हो गया, जिससे एरका-तृण उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् एक मछुएके जालमें वह मत्स्य पकड़ा गया और उसके पेटसे वह लोहखण्ड निकला। जरा नामक एक व्याधने उस लोहखण्डको लेकर अपने बाणके अग्रभागपर लगा लिया।

कुछ समयके बाद द्वारका-परिकरोंको साथ लेकर श्रीकृष्ण प्रभासतीर्थ गये। वहाँपर मैरेय-मधु पानसे मत्त होकर यादवगण परस्पर कलह करने लगे। वे लोग अपने नाना प्रकारके अस्त्रादिद्वारा परस्पर युद्ध करके शेषमें (मूसल चूर्णसे उत्पन्न) एरका-तृणद्वारा परस्परके आघातद्वारा निधनको प्राप्त हुए। श्रीमद्भागवत १। १५। २३ श्लोकसे जाना जाता है कि केवल चार-पाँच व्यक्ति ही बचे रह गये—

> वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम्।
> अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः॥

इनमेंसे श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्र भी एक थे। यादवगणोंका निधन होनेपर बलरामने समुद्रके किनारे जाकर योगावलम्बनपूर्वक मनुष्य-लोकको त्याग दिया। बलरामका निर्वाण देखकर श्रीकृष्ण चतुर्भुजरूप धारणकर भूमिपर लेट गये। दैवात्

* बँगला श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, २३ वें परिच्छेदके ५९ वें पयारकी टीकासे अनूदित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्त जरा व्याध मृगोंकी खोजमें उधर आया और दूरसे श्रीकृष्णके पादपद्मको मृगका मुख मानकर मूसलावशिष्ट लौह-खण्डद्वारा निर्मित बाणसे उनको विद्ध कर दिया; पश्चात् श्रीकृष्णको देखकर अनिच्छाकृत अपराधके लिये उसने क्षमा-प्रार्थना की। श्रीकृष्णने कहा—'व्याध ! तुम डरो नहीं। यह सब मेरी मायाका ही कार्य है, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। मेरे आदेशसे तुम वैकुण्ठ जाओ।' व्याधने श्रीकृष्णकी तीन बार प्रदक्षिणा की और दिव्य विमानपर चढ़कर वैकुण्ठ चला गया। श्रीकृष्ण आग्नेयी योगधारणाके द्वारा अपना लोकाभिराम शरीर दग्ध न करके सशरीर अपने धामको चले गये (श्रीमद्भा० ११ । ३१ । ६)। इसके पश्चात् विष्णुपुराण ५ । ३८ । १ तथा महाभारत, मौसलपर्व ७ । ३१ श्लोकमें लिखा है कि बलराम और श्रीकृष्णके परित्यक्त देहका अग्नि-संस्कार किया गया था। यादवोंके देह-संस्कारकी बात भी लिखी है।

श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण एवं महाभारतमें यादवगण एवं श्रीकृष्णके अन्तर्धानके सम्बन्धमें जो कुछ वर्णन है, उसका यथाश्रुत अर्थ ही संक्षेपमें ऊपर लिखा गया है। इससे जाना जाता है कि यादवोंकी मृत्यु हुई है, उनके देह भी अग्निमें दग्ध किये गये हैं।

अब प्रश्न उठता है कि 'श्रीकृष्ण यदि स्वयं भगवान् हों, तो उनकी मृत्यु क्यों हुई एवं उनके देहका अग्नि-संस्कार भी कैसे सम्भव होगा ? और यादवगण यदि उनके पार्षद हों तो उनकी भी मृत्यु और अग्नि-संस्कार कैसे सम्भव है ?'

क्रमशः इन प्रश्नोंकी आलोचना की जाती है। सर्वप्रथम श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आलोचना की जाय।

श्रीकृष्णके अन्तर्धान-सम्बन्धमें महाभारतका कहना है—'जरा नामक व्याधने दूरसे योगासनमें शयन करते हुए केशवको देखकर, मृग जानकर, उनके प्रति शर-निक्षेप किया। वह शर निक्षिप्त होते ही उसके द्वारा हृषीकेशका पदतल विद्ध हो गया। तब उस व्याधने मृग लेनेकी वासनासे शीघ्र वहाँ आकर देखा कि अनेक-बाहु-सम्पन्न पीताम्बरधारी योगासनमें शयान पुरुष उसके शरसे विद्ध हुए हैं। उनके दर्शनमात्रसे अपनेको अपराधी मानकर शङ्कित मनसे वह व्याध उनके चरणोंमें गिर पड़ा। तब महात्मा मधुसूदनने उसको आश्वासन प्रदान करके आकाशमण्डलको उद्भासित करते हुए गमन किया।* इस समय इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार एवं रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सरागण उनके प्रत्युद्गमनार्थ (स्वागतार्थ) निकल पड़े; तब भगवान् नारायण उनके द्वारा सत्कृत होकर उनके सहित अपने अप्रमेय स्थानमें समुपस्थित हुए' (महाभारत, मौसलपर्व, चतुर्थ अध्याय)।

श्रीकृष्ण अपने देहको भूतलपर त्यागकर चले गये थे—यह बात महाभारतमें उल्लिखित वर्णनसे नहीं जानी जाती, बल्कि यह जाना जाता है कि वे आकाशमण्डलको उद्भासित करते हुए सशरीर ही 'अपने अप्रमेय धाम'में पधारे थे। इन्द्रादिकी अभ्यर्थना एवं सत्कारादिके उल्लेखसे स्पष्ट ही जाना जाता है कि उन्होंने देहहीन ज्योतिरूपसे या आत्मारूपसे वहाँ गमन नहीं किया था।

श्रीमद्भागवतका कहना है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥
(११ । ३१ । ६)

'भगवान् श्रीकृष्णने आग्नेयी योगधारणासे अपने श्री-विग्रहको, जो लोगोंकी धारणा एवं ध्यानका मङ्गलमय आधार था, दग्ध न करके (सशरीर) अपने धाममें (अप्रकट प्रकाशमें) प्रवेश किया।'

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके ३१ वें अध्यायकी टीकाके प्रारम्भमें ही श्रीधर स्वामिपादने लिखा है—'श्रीकृष्णः स्वेच्छया धाम स्वतन्वेव समाविशत्—श्रीकृष्णने स्वेच्छासे अपने तनुके सहित ही अपने धाममें प्रवेश किया।' 'स्वेच्छा-मृत्यु योगीजन आग्नेयी योगधारणाद्वारा अपने तनुको दग्ध करके ही लोकान्तरमें गमन करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने आग्नेयी योगधारणा दिखायी अवश्य है, किंतु अपने देहको दग्ध न करके सशरीर ही उन्होंने अपने धाममें प्रवेश किया है। 'योगिनो हि स्वच्छन्दमृत्यवः स्वतनुमाग्नेय्या योगधारणया

---

* अथापश्यत पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम्।
मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शङ्कितात्मा॥
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या॥
(महा०, मौसल० ४ । २३-२४)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दग्ध्वा लोकान्तरं प्रविशन्ति, भगवांस्तु न तथा, किंतु अदग्ध्वैव स्वतनुसहित एव स्वकं धाम वैकुण्ठाख्यं प्राविशत्।' (श्रीधरस्वामी) तब उन्होंने आग्नेयी योगधारणाका अवलम्बन ही क्यों किया ? यह किया केवल योगियोंको देहत्यागकी रीतिकी शिक्षा देनेके लिये—'योगिनां देहत्यागशिक्षणार्थमेव धारणामनु तदन्तर्धापनमित्येव ज्ञेयम्' (क्रमसंदर्भ)

जो हो, श्रीमद्भागवतसे जाना गया कि श्रीकृष्ण भूतलपर कोई देह छोड़कर नहीं गये, उन्होंने सशरीर ही अपने धाममें (अप्रकट प्रकाशमें) प्रवेश किया है। श्रीमद्भागवतकी परवर्ती उक्तिसे भी इसका समर्थन होता है। परवर्ती वर्णन इस प्रकार है—

'मौसल-लीलाकी कथा सुनकर देवकी, रोहिणी और वसुदेवने कृष्ण-बलरामके शोकमें प्राण त्याग कर दिया। यदुकुलकी स्त्रियोंने अपने-अपने पतिको आलिङ्गन कर चिता-रोहण किया···बलदेवकी पत्नीने उनके देहका आलिङ्गन करके अग्निमें प्रवेश किया। वसुदेव-पत्नियोंने वसुदेवका शरीर और श्रीकृष्णकी पुत्रवधुओंने प्रद्युम्न आदिके शरीरको आलिङ्गन करके अग्नि-प्रवेश किया। रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण-पत्नियोंने श्रीकृष्णमें चित्त-संनिवेश करके अग्निमें प्रवेश किया।* श्रीकृष्णपत्नियोंने श्रीकृष्णके देहको आलिङ्गन करके चितारोहण किया—ऐसी बात नहीं कही गयी। इससे समझा जाता है कि श्रीकृष्ण कोई भी देह छोड़कर नहीं गये। उन्होंने सशरीर ही अपने धाममें (अप्रकट प्रकाशमें) प्रवेश किया था।

पहले कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण भूतलपर कोई देह छोड़ गये हों—ऐसी बात उनके अन्तर्धान-वर्णन-प्रसङ्गमें महाभारतमें नहीं कही गयी; किंतु पीछे मौसलपर्वके सातवें अध्यायमें कहा गया है कि 'अर्जुनने बलदेव और वासुदेवके शरीरोंको खोजकर लाकर चितानलमें भस्मसात् किया। वासुदेव श्रीकृष्णके देहको अर्जुनने चितानलमें भस्म किया, वह कहाँसे आया ?

श्रीकृष्णके अन्तर्धानके सम्बन्धमें विष्णुपुराणका कहना है—"श्रीकृष्णके अनुग्रहसे जरा नामक व्याधके वैकुण्ठ जानेके पश्चात् 'भगवान्ने अमल, अव्यय, अचिन्त्य, ब्रह्मभूत वासुदेव-मय अपनी आत्मामें आत्माका योग करके, त्रिविधात्मक प्रकृतिका परित्याग करके मानव-देहका परित्याग किया। वासुदेवात्मक भगवत्-स्वरूप, जन्म और जरारहित, अविनाशी, अप्रमेय, अखिलस्वरूप है'"—(पञ्चानन-तर्करत्नकृत अनुवाद।)

गते तस्मिन् स भगवान् संयोज्यात्मानमात्मनि।
ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले॥
अजन्मन्यजरेऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि।
तत्याज मानुषं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम्॥
(वि० पु० ५।३७।७४-७५)

और भी कहा गया है कि 'अर्जुनने श्रीकृष्ण और बलरामके कलेवरद्वय एवं अन्यान्य यादवोंके सब देहोंका अन्वेषण करके अग्नि-संस्कार कराया'—

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य कृष्णरामकलेवरे।
संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात्॥
(वि० पु० ५।३८।१)

विष्णुपुराणके वर्णनके अनुसार श्रीकृष्णके देहत्यागकी बात भी जानी जाती है एवं देहके सत्कारकी बात भी जानी जाती है। किंतु देहत्यागकी बात जो ऊपर लिखी गयी है, वह यथाश्रुत अर्थमात्र है। उद्धृत अनुवादमें श्लोकके 'संयोज्यात्मानमात्मनि' अंशके अनुवादमें कहा गया है, 'वासुदेवमय अपनी आत्मामें आत्माका योग करके'। यहाँपर दो 'आत्मा' शब्दोंका एक ही अर्थ नहीं हो सकता; एक ही अर्थ माननेसे 'अपनी आत्मामें आत्माका योग करके' वाक्यसे कोई भी अर्थकी उपलब्धि नहीं होती। 'आत्मामें आत्माका योग' इसका तात्पर्य क्या है ? इस प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतमें भी ठीक ऐसी ही उक्ति दीखती है—

संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत्।
(श्रीमद्भा० ११।३१।५)

इसकी 'क्रमसंदर्भ' टीकामें लिखा है—
'आत्मनि स्व-स्वरूपे एव आत्मानं मनः संयोज्य।'

—यहाँपर 'आत्मनि—आत्मामें' शब्दका अर्थ है—'स्व-स्वरूप' में—अपने नित्यसिद्ध स्वरूपमें और 'आत्मानं' शब्दका अर्थ है 'मन'। दो 'आत्मा' शब्दोंमेंसे सप्तमी विभक्तियुक्त 'आत्मा' शब्दका अर्थ है—'स्व-स्वरूप' और द्वितीया विभक्ति-

---

* देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ।
कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम्॥
रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन्।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन् हरेः स्नुषाः।
कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः॥
(श्रीमद्भा० ११।३१।१८, २०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्त 'आत्मा' शब्दका अर्थ है—'मन'। इस प्रकार विष्णुपुराणके अनुवादमें 'वासुदेवमय अपनी आत्मामें आत्माका योग करके' वाक्यका तात्पर्य इस प्रकार होगा—श्रीकृष्ण वासुदेवमय अपने स्वरूपमें मनका संयोग करके। 'वासुदेवमय स्वरूप'का अर्थ है—वासुदेव ही उनका स्वरूप है। इस स्वरूपमें एवं जिन्होंने 'मानव-देह परित्याग किया' इसमें किसी भी प्रकारका भेद नहीं है। वे आत्माराम हैं, अपने आपमें ही स्वयं रमण करते हैं 'वासुदेवमय अपने स्वरूपमें मन-संयोग किया'—इस वाक्यसे उनकी आत्मारामता ही सूचित होती है। यह स्वरूप अमल, अव्यय, अचिन्त्य, ब्रह्मभूत, जन्म-जरारहित, अविनाशी, अप्रमेय एवं अखिलस्वरूप है—यह भी विष्णुपुराणने बताया है एवं ऐसे स्वरूपमें जिन्होंने मनःसंयोग किया, वे 'भगवान्' हैं, यह बात भी विष्णुपुराणने बतायी है। अतएव उनमें देह-देही-भेद नहीं रह सकता—

देहदेहिभिदा चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्।
(ब्रह्मसंहिता)

वे आनन्दघन, चिद्घन, रसघन, सच्चिदानन्द हैं। उनका जन्म भी नहीं है, मृत्यु भी नहीं है। मायाबद्ध जीवके ही जन्म-मृत्यु होते हैं। जडदेहका जन्म होता है, इस जड देहमें देही जीवात्माका आश्रय है; जीवात्माके देह छोड़कर जानेको ही 'मृत्यु' कहते हैं। देहधारी जीवमें देह जड है, देही जीवात्मा चिद्-वस्तु है। अतएव जीवमें देह एवं देही—दो वस्तुएँ हुईं। इसीसे जीवके लिये अपना देह-ग्रहण जिस प्रकार सम्भव है, उसी प्रकार देहत्याग करना भी सम्भव है। किंतु भगवान्का देह जो वस्तु है, भगवान् भी वही हैं—एक ही आनन्दमय वस्तु हैं। 'देह' नामकी उनकी पृथक् कोई वस्तु नहीं है। इसीसे उनके लिये जिस प्रकार जन्म नहीं है, वैसे ही मृत्यु या देह-त्याग भी नहीं है; केवल आविर्भाव-तिरोभावमात्र हो सकता है। वे जब अपनी नरलीला प्रकट करते हैं, मानवकी तरह शुक्र-शोणितसे उनका जन्म नहीं है। जो नित्य वस्तु है, तथापि लोक-नयनोंके गोचरीभूत नहीं थी, उसको जन्म-लीलाके आवरणसे लोक-नयनोंके गोचरीभूतमात्र करते हैं। अतएव उनका जन्म नहीं है। इसका 'अजन्मनि' शब्दसे विष्णुपुराणने स्पष्ट भावसे उल्लेख किया है। 'वासुदेवमय' शब्दका तात्पर्य भी विवेच्य है। 'वसुदेव' शब्दका अर्थ है—'शुद्ध-सत्त्व'। श्रीमद्भागवतने 'सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितम्' वाक्यसे यह बता दिया है। 'वासुदेव' शब्दका अर्थ है—'वसुदेव (शुद्धसत्त्व)-घटित एवं 'वासुदेवमय' शब्दका अर्थ है—'शुद्धसत्त्वमय सच्चिदानन्द'। वासुदेवमय या सच्चिदानन्दमय जिनका स्वरूप है, उनके जन्म-मृत्यु सम्भव नहीं। जिस प्रकार वे सशरीर आविर्भूत होते हैं, उसी प्रकार वे सशरीर तिरोभावको भी प्राप्त होते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि यदि वे सशरीर तिरोभावको प्राप्त होकर रहें, तो विष्णुपुराणमें 'तत्याज मानुषं देहं'—मनुष्य-देहका त्याग किया' क्यों कहा गया? उत्तरमें कहा जाता है कि यहाँपर मनुष्य-देहका तात्पर्य क्या है? यदि यथाश्रुत अर्थ लिया जाय, तो 'मनुष्य-देह'का अर्थ होगा—साधारण मनुष्यकी तरह द्विभुजावाला शरीर। तब श्रीकृष्णने द्विभुज देहका ही त्याग किया। किंतु तब उनका द्विभुज-देह रहा—यह बात विष्णुपुराणने भी नहीं कही। विष्णुपुराण कहता है कि जरा व्याधने जाकर देखा एक 'चतुर्भुज नर-स्वरूप'। 'ततश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम्' वि० पु० ५। ३७। ७०। यह 'मनुष्य-देह' नहीं है। अतएव 'मनुष्य-देहका त्याग किया'—इस प्रकारका यथाश्रुत अर्थ विचार-संयुक्त नहीं है। तब वास्तविक अर्थ क्या होगा? 'मनुष्य-देह'का अर्थ होगा—'मनुष्यलोकमें प्रकटित देह या विग्रह'। 'उस देहका त्याग किया'का अर्थ होगा—प्रकटित देहका त्याग किया अर्थात् देहका प्रकटत्व त्याग किया, प्रकटित देहको (अतएव लीलाको भी) अप्रकट किया; जो लोक-नयनोंके गोचरीभूत किये थे, उसको अब लोक-नयनोंसे अन्तर्हित किया। इस प्रकार अर्थ किये बिना विष्णुपुराणके वाक्योंकी परस्परमें संगति नहीं रहती।

इस प्रकारके अर्थके पीछे युक्ति एवं न्यायका विधान भी विद्यमान है। एक पथिकने जलसे पूर्ण स्वर्ण-कलश लेकर मार्गमें चलते-चलते थकावटके कारण भार ले चलनेमें असमर्थ होकर 'सजल स्वर्णकलशका परित्याग कर दिया'—ऐसा कहनेका भाव—जल फेंककर भार घटाकर स्वर्णकलशको रखना ही—समझा जाता है। सजल-कनककलशं पान्थस्त्यजतीत्युक्ते भारवहनश्रमान्निर्जलीकृतस्य कलशस्य ग्रहणं प्रतीयते। यहाँपर 'सजल-कनक-कलश' शब्दमें 'कनक-कलश' शब्द विशेष्य है, 'सजल—जलपूर्ण' शब्द है उसका विशेषण। भारवहनमें असमर्थ पथिक विशेष्य कनक-कलशको परित्याग करके चला जाय—यह सम्भव नहीं है, जल फेंककर भार घटाकर कनक-कलशको लेकर जायगा—यही सम्भव है;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतएव 'त्यजति—त्यागकर' इस क्रियापदके साथ विशेष्य 'कनक-कलश'का सम्बन्ध समीचीन नहीं होता, विशेषण 'सजल'के साथ ही उसका सम्बन्ध है, अर्थात् पथिक कलशके 'सजलत्व—जल ही' को त्याग करता है। इसी प्रकार विष्णुपुराणोक्त श्लोकका 'तत्याज मानुषं देहम्' वाक्यमें 'देहम्' है विशेष्य और 'मानुषम्' है उसका विशेषण । श्रीकृष्णका देह सच्चिदानन्द होनेके कारण उसका त्याग सम्भव नहीं, अतएव उसके साथ 'तत्याज' क्रियाका सम्बन्ध समीचीन नहीं होता । इसलिये इस क्रियापदका सम्बन्ध होगा 'मानुषम्—मनुष्यलोकमें प्रकटित' विशेषण शब्दके साथ; अर्थात् श्रीकृष्णने 'मानुषम्'—मनुष्यलोकमें प्रकटत्वका त्याग किया और देहको रखकर सशरीर अप्रकट प्रकाशमें प्रवेश किया । इस प्रकारके अर्थका समर्थक न्याय है—

'सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्यबाधे ।'

'विशेषणयुक्त विशेष्यके साथ विधि या निषेधका योग रहनेपर यदि विशेष्यके साथ उस विधि या निषेधका सम्बन्ध बाधा प्राप्त हो, तो विशेषणके ऊपर ही उस विधि या निषेधका प्रभुत्व संक्रामित होगा ।' यहाँपर विशेष्य पद 'देह' है, उसके साथ 'तत्याज' क्रियापदरूप विधिका सम्बन्ध-बाधा होनेके कारण विशेषण 'मानुष'के साथ उसका सम्बन्ध होगा ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विष्णुपुराणकी उक्तिके तात्पर्यसे भी समझा जाता है कि 'श्रीकृष्ण सशरीर अन्तर्धानको प्राप्त हुए थे ।'

अब प्रश्न उठ सकता है कि यदि वे सशरीर अन्तर्धानको प्राप्त हुए थे, तो विष्णुपुराणमें क्यों कहा गया कि अर्जुनने श्रीकृष्णके देहका अन्वेषण करके सत्कार किया था । महाभारत भी तो यही कहता है ? यदि श्रीकृष्ण सशरीर ही स्वधामको गये थे तो सत्कारके लिये देह कहाँसे आया ?

दो प्रकारसे इस समस्याके समाधानकी चेष्टा की जा सकती है ।

प्रथमतः यह स्पष्ट ही देखा जाता है कि विष्णुपुराण एवं महाभारत—दोनोंमेंसे प्रत्येक ग्रन्थमें ही—श्रीकृष्णके अन्तर्धानके सम्बन्धमें दोनों उक्तियोंमेंसे एक उक्ति दूसरी उक्तिकी विरोधी है । विष्णुपुराणकी तरह महाभारतसे भी जाना जाता है कि श्रीकृष्ण सशरीर अन्तर्धानको प्राप्त हुए थे और यह भी जाना जाता है कि उनके परित्यक्त देहका सत्कार किया गया था । जो सशरीर अन्तर्धान हुए, उनका परित्यक्त देह रहना सम्भव नहीं । परस्पर-विरोधी दोनों वाक्योंमेंसे एक ही सत्य हो सकता है, दोनों सत्य नहीं हो सकते । अब देखना होगा कि कौन-सा सत्य है । जिस वाक्यके सम्बन्धमें किसी भी ग्रन्थमें कोई मतभेद दिखायी न दे, उसीको सर्वसम्मत सत्य मानकर ग्रहण करना होगा । श्रीकृष्ण सशरीर अन्तर्धान हुए थे—यह बात सभी ग्रन्थोंसे जानी जाती है, इसमें किसी ग्रन्थका मतभेद नहीं है; अतएव इसीको सत्य मानकर ग्रहण करना होगा और श्रीकृष्णका परित्यक्त देह पड़ा रहा था और उसका अग्नि-संस्कार किया गया था—यह बात पुराण-शिरोमणि एवं प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवत नहीं बताती । अतएव उनके परित्यक्त देहकी अवस्थिति तथा उसके सत्कार-सम्बन्धमें मतभेद है । यह बात सर्वसम्मत नहीं होनेके कारण—तथा जिन दो ग्रन्थोंमें परित्यक्त देहकी अवस्थिति एवं सत्कारका उल्लेख है, उन्हीं दोनों ग्रन्थोंमेंसे प्रत्येक ग्रन्थमें ही श्रीकृष्णके सशरीर अन्तर्धान-प्राप्तिकी पूर्वोक्ति होनेके कारण—इस (परित्यक्त देहकी अवस्थितिसूचक वाक्य) को सत्य मानकर स्वीकार नहीं किया जा सकता । हो सकता है कि अनवधानतावश ही इन दोनों ग्रन्थोंमें परित्यक्त देहका उल्लेख किया गया है । किसी-किसी ऋषिकी इस प्रकारकी अनवधानताकी बात श्रीमद्भागवतमें भी देखनेमें आती है । श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्को कहते हैं—

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ।
यत् स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥
(श्रीमद्भा० १० । ७७ । ३०)

'हे राजर्षे ! (शाल्वके द्वारा मायारचित वसुदेवकी हत्या करनेसे श्रीकृष्ण शोकार्त हुए थे) कोई-कोई ऋषि यह बात कहते हैं । इससे ऐसा लगता है कि उन्होंने पूर्वापरका अनुसंधान करके यह बात नहीं कही, अपने ही वाक्योंकी परस्पर-विरुद्धता उन्होंने स्मरण नहीं की ।' विष्णुपुराणमें एवं महाभारतमें मायामलिन-चित्तवाले साधारण लोक-प्रतीतिके अनुरूप ही बात लिखी गयी है । (टीकाका शेषांश देखिये) ।

द्वितीयतः, कोई-कोई कह सकते हैं कि बलदेव एवं परस्परकर्तृक निहत यादवोंके परित्यक्त देह भी पड़े रहे थे एवं उनके परित्यक्त देहोंका भी तो सत्कार किया गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलराम हैं श्रीकृष्णके विलासरूप, अतएव उनका देह भी प्राकृत नहीं है, उनके भी जन्म-मृत्यु सम्भव नहीं हैं, वे भी सच्चिदानन्द विग्रह हैं। और यादवगण भी श्रीकृष्णके नित्य पार्षद हैं, अतएव वे भी जीवतत्त्व नहीं हैं, उनके भी जन्म मृत्यु नहीं हो सकते; श्रीकृष्णके आविर्भाव-तिरोभाव हैं। वे सब भी सच्चिदानन्द विग्रह हैं। तथापि उन्होंने भी देह-परित्याग किये थे; उनके परित्यक्त देहका भी सत्कार किया गया था; श्रीमद्भागवतमें भी यही बात है; इसके सम्बन्धमें तो कोई मतभेद नहीं है; अतएव यह तो सत्य मानकर स्वीकृत हो सकता है। यदि ऐसा ही हो, तब श्रीकृष्णके परित्यक्त देहकी अवस्थिति एवं उसके सत्कारको स्वीकृत होनेमें आपत्ति किस प्रकार उठ सकती है ?

उत्तर—बलदेव एवं यादवगण श्रीकृष्णके नित्य पार्षद सच्चिदानन्द-तत्त्व हैं, उनके जन्म-मृत्यु नहीं हैं, आविर्भाव-तिरोभाव मात्र हैं—यह बात सत्य है। किंतु जिन देहोंका सत्कार किया गया था, वे वास्तवमें उनके देह नहीं थे। ये देह थे मायाकल्पित। इस प्रकारके मायाकल्पित देहकी बातें शास्त्रोंमें और भी देखनेमें आती हैं। कूर्म-पुराणसे जाना जाता है कि रावण जिस सीताको हरण करके ले गया था, वे प्राकृत सीता नहीं थीं। वे थीं अग्निदेवकी कल्पित छाया-सीता या माया-सीता।

सीतयाऽऽराधितो वह्निश्छायासीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः सीता वह्निपुरं गता॥
परीक्षासमये वह्निं छायासीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय स्वपुरादुदनीनयत्॥

(कूर्मपुराण)
(श्रीचै० च०, म०, नवम परिच्छेदमें उद्धृत)

महाभारतके स्वर्गारोहण-पर्वसे भी जाना जाता है कि युधिष्ठिर जब स्वर्ग गये थे, तब अर्जुन आदिके साथ एक ही संग वास करनेकी इच्छा प्रकट करनेपर उनको उन लोगोंके पास ले जाया गया था। उन्होंने देखा कि वे सब नरकमें वास कर रहे हैं। इससे उनके विस्मित होनेपर उनका विस्मय दूर करनेके लिये धर्मराजने उनसे कहा था—'युधिष्ठिर! अर्जुनादि तुम्हारे भ्रातृवर्ग वास्तविक नरकमें नहीं हैं। तुम जिस नरकको देख रहे हो, वह देवराज इन्द्रद्वारा कल्पित मायामात्र है'—

न च ते भ्रातरः पार्थ नरकस्था विशाम्पते।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता॥

(गीताप्रेस संस्करण)
(म० भा०, स्वर्गा० ३। ३६)

केवल यादवोंके परित्यक्तरूपसे प्रतीयमान देह ही मायाकल्पित थे, इतनी ही बात नहीं है; सम्पूर्ण मौसलपर्व-लीला ही श्रीकृष्णकी माया थी। इस बातको श्रीकृष्णने स्वयं ही सारथि-दारुकसे कहा है—

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः।
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज॥

(श्रीमद्भा० ११। ३०। ४९)

'तुम भी मेरे धर्ममें आस्था रखते हुए ज्ञाननिष्ठ और उपेक्षक होकर ये सब मेरी मायारचित जानकर शान्तिलाभ करो।' इस श्लोककी 'क्रमसंदर्भ' टीका कहती है—

अथ दारुकसान्त्वनाय मौसलाद्यार्जुनपराभवपर्यन्ताया लीलाया ऐन्द्रजालवद्रचितत्वमुपदिशति त्वं त्विति।...अधुना प्रकाशितां सर्वामेव मौसलादिलीलां मम मायया एव ऐन्द्रजालवद् रचितां विज्ञाय इत्यादि—अधुना प्रकाशित मौसलादि सम्पूर्ण लीलाको ही इन्द्रजालकी तरह मेरी माया-रचित समझो।

प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णकी मायासे विमोहित होकर ही यादवोंने आपसमें संघर्षकी सृष्टि की थी—यही बात श्रीशुकदेवजीने कही है—

कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत्।

(श्रीमद्भा० ११। ३०। १३)

और श्रीकृष्णने अपने अन्तर्धानका संकल्प करके अपने द्वारका-परिकर यादवगणको भी अन्तर्धापित करानेका संकल्प किया था एवं यादवोंके स्वयंके बीच एक कलहकी सृष्टि करके, उसी उपलक्ष्यमें उनको अन्तर्धापित करानेके उद्देश्यसे ब्रह्मशापकी अवतारणा की थी, यह भी श्रीशुकदेव-जी बता गये हैं—

भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य
गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं
यद् यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथंचि-
न्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम्।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणु-
स्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥
एवं व्यवसितो राजन् सत्यसंकल्प ईश्वरः।
शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १ । ३-५)

यह सब श्रीकृष्णका मायारचित इन्द्रजाल मात्र है, यह बात श्रीशुकदेवजीने भी परीक्षित्‌को बतायी है—

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य।
(श्रीमद्भा० ११ । ३१ । ११)

'राजन् ! यादवादिकी एवं उनकी स्वयंकी भी आविर्भाव-तिरोभाव-चेष्टा नटकी तरह माया-विडम्बनामात्र है, इस श्लोककी टीकामें श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्तीने एक ऐन्द्रजालिकका वृत्तान्त दिया है । किसी एक ऐन्द्रजालिक नटने किसी राजाकी सभामें उपस्थित होकर अपना कला-चातुर्य-प्रदर्शनके उद्देश्यसे अपने एक ही शरीरसे अचानक बहुत-से राजा और राजपुत्र, हाथी, घोड़े-सैन्यादि प्रकट करके, उनमें आपसमें कलह उत्पादन कर, अस्त्र-शस्त्रके प्रहारसे सबको नष्ट करा दिया । पश्चात् स्वयं भी योगासनमें स्थित होकर समाधिस्थ होनेका भान किया। तब उसके देहसे अग्निने प्रकट हो उसके देहको जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर उसके स्त्री-पुत्रादिने भी शोक-विह्वल हो उसी अग्निमें जलकर प्राण-त्याग कर दिये । कुछ दिनों बाद राजाको एक पत्र मिला, जिसमें उस ऐन्द्रजालिक नटने उनको बताया था कि राजाने जो कुछ देखा था वह नटकी इन्द्रजाल-विद्याका कला-कौशल था; सब कुछ मिथ्या था । इसी प्रकार श्रीकृष्णकी मौसलादि लीला भी उनकी मायाका ही कला-कौशल मात्र थी, वास्तविक नहीं ।

वास्तवमें श्रीकृष्णने जब अन्तर्धान-लीला करनेका संकल्प किया, तब उन्होंने अपने नित्य-परिकर प्रद्युम्नादिको अन्तर्हित कराकर, लीला-प्रकटनके समय उनमें कंदर्प-कार्तिकेयादि जिन्होंने प्रवेश किया था, सबके अलक्षित भावसे उन लोगोंको प्रद्युम्न आदिके देहसे निष्कासित करके मायाकल्पित देह देकर उनको प्रद्युम्नादि रूपसे ही सबके निकट प्रतिभात कराया। पीछे अन्यान्य द्वारकावासियोंके साथ उनको लेकर, प्रभास तीर्थमें जाकर उनके द्वारा दान-ध्यानादि कराया। ये मायाकल्पित देहधारी द्वारकावासी ही मैरेय-मधु पान करके बुद्धि-भ्रष्ट हो गये एवं इन्होंने परस्परमें कलह करके एक-दूसरेको मार डाला । प्रद्युम्नादिके मायाकल्पित देहोंसे ही उन्होंने कंदर्प-कार्तिकेयादि अधिकारी भक्तगणको अपने-अपने स्थानपर—स्वर्गादिमें—भेज दिया था । यहीं सब देह पड़े रह गये थे एवं जिन देहोंका संस्कार किया गया था, वे सभी मायाकल्पित थे ।

'स्वीयलीलापरिकरैर्यदुभिः सह द्वारावत्यामेव यथा-स्थितमेव विराजिष्ये, किंतु प्रापञ्चिकसर्वलोकचक्षुर्भ्यस्तिरो-भूयैव तथा प्रद्युम्नसाम्बादिषु मन्नित्यपरिकरेषु तत्तद्विभू-तयो ये देवाः कन्दर्पकार्तिकेयादयः प्रवेशिता वर्तन्ते तानेव योगबलेन तत्तद्देहतोऽलक्षितमेव निष्कास्य प्रद्युम्नादित्वेन एव अभिमन्यमानान् सर्वलोकलोचनेष्वपि तथैव भातान् कृत्वा तैरन्यैश्च द्वारकावासिजनैः सार्द्धं प्रभासं गत्वा दानध्यानमधु-पानादिकं कारयित्वा तानाधिकारिभक्तान् स्वस्वाधिकारेषु स्वर्गं एव प्रस्थाप्य तदन्यैर्द्वारकावासिजनैः सह दाशरथिस्वरूप इव वैकुण्ठे प्रस्थास्ये, किंतु लोकलोचनेषु मायादोषं प्रवेश्यैव येन लोका एवं मंस्यन्ते द्वारावत्याः सकाशान्नि-ष्क्रम्य सर्वे यदुवंश्याः प्रभासं गत्वा ब्रह्मशापग्रस्ता मधु पीत्वा मत्ताः परस्परं प्रहृता देहांस्तत्यजुः । परमेश्वरोऽपि स रामस्त्यक्तमानुषदेह एव स्वधाममारुरोह तस्मान्मानुषशरीर-मिदमनित्यं मायिकमेके वदिष्यन्ति ।' (श्रीमद्भागवतके 'एते घोरा महोत्पाताः' इत्यादि ११ । ३० । ५ श्लोककी टीकामें श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती)

किंतु श्रीकृष्णका कोई भी मायाकल्पित देह नहीं था । अन्तर्धानके पश्चात् उनका कोई परित्यक्त देह भी नहीं था । जो अपने गुरु सांदीपनिमुनिके मृतपुत्रको यमपुरीसे उनके मर्त्यदेहमें वापस ले आये, जिन्होंने मातृगर्भमें ब्रह्मास्त्र-दग्ध परीक्षित्‌की रक्षा की, जिन्होंने अन्तकके अन्तक शंकरको भी बाणयुद्धमें पराभूत किया, जिन्होंने जरा नामक व्याधको सशरीर स्वर्ग भेज दिया, वे क्या आत्म-संरक्षणमें अक्षम हैं ? क्या वे सशरीर अपने धाममें प्रवेश करनेमें असमर्थ हैं ?

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं
त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम्।
जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ३१ । १२)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार स्पष्ट है कि मौसल-लीला और तत्-संक्रान्त सम्पूर्ण व्यापार मायामय—अवास्तविक है।

श्रीकृष्णकी मौसल-लीला मायाकल्पित है—यह बात मायामलिनचित्तवाले प्राकृत लोग नहीं समझ सकते। जिनकी आँखें पित्तादि दोषयुक्त हैं, वे जिस प्रकार सफेद उज्ज्वल शङ्खको भी पीतवर्ण देखते हैं, उसी प्रकार जो लोग मायाबद्ध हैं, वे उनकी सच्चिदानन्दमयी निर्वाण-लीलाको प्राकृत मानते हैं और मानते हैं कि मानो उन्होंने द्वारकावासियोंसहित प्राकृत लोगोंकी तरह ही देहत्याग किया एवं उनकी महिषीगणने भी अग्नि-प्रवेश करके देहत्याग किया। केवल प्राकृत लोग ही ऐसा मानते हैं—यह नहीं है; श्रीकृष्ण-मायासे मुग्ध होकर अर्जुनादिने भी एवं पराशरादि मुनिगणने (विष्णुपुराणमें) एवं वैशम्पायनने भी (महाभारतमें) इस प्रकार साधारण लोगोंकी प्रतीतिके अनुरूप कथाका ही वर्णन किया है।

'यथा धवलोज्ज्वलमपि शङ्खं पित्तादिदोषोपहतचक्षुषो मलिनपीतमेव पश्यन्ति, तथैव सच्चिदानन्दमयीमपि मन्निर्याण-लीलां मायादोषोपहतचित्तचक्षुषः प्रद्युम्नादिसर्वपरिकर-सहितमद्देहत्याग-रुक्मिण्यादिमहिषीवह्निप्रवेशादिदुरवस्थामयीं प्राकृतीमेव द्रक्ष्यन्ति निश्चेष्यन्ति च। न केवलं प्राकृताः, किंतु मदिच्छावशार्जुनादयोऽपि तथैव वैशम्पायनपराशरादयो मुनयोऽपि स्वस्वसंहितासु वर्णयेयुरपि एते घोरा महोत्पाताः—

(इत्यादि श्रीमद्भा० ११। ३०। ५ श्लोककी टीकामें श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती)। अर्जुनने जिन सब देहोंका संस्कारादि किया है, वे सब मायाकल्पित हैं—इस बातको श्रीकृष्णकी मायासे अर्जुन भी नहीं समझ सके। अज्ञतावश साधारण लोगोंने मान लिया कि सभीने देह-त्याग किया है। इस लोक-प्रतीतिका अनुसरण करके ही वैशम्पायनने महाभारतमें एवं पराशरने विष्णुपुराणमें वर्णन किया है।

वर्णाश्रमकी ऐतिहासिकता

(लेखक—डॉ० श्रीनीरजाकान्त चौधुरी, देवशर्मा, एम्०ए०, एल्-एल्०बी०, पी-एच्०डी०)

[गताङ्क पृष्ठ ११४७ से आगे]

स्त्री और शूद्र वेदके अनधिकारी

शास्त्रानुसार किसी भी स्त्रीका, यहाँतक कि ब्राह्मण-स्त्रीका भी वेदमन्त्र-पाठमें अधिकार नहीं है, अतएव यज्ञ-कार्यमें भी अधिकार नहीं है।

(क) न वेदे पत्नीं वाचयति।

(सांख्यायनब्राह्मण ७। ३०)

जब पति यज्ञ-कार्यमें प्रवृत्त हो, केवल उसी समय उसकी पत्नी यज्ञमण्डपमें अपने पतिके साथ सहधर्मिणीके रूपमें अधिकारपूर्वक उस कर्ममें योग दे सकती है। किंतु अकेली कोई स्त्री वेदमन्त्रका पाठ या कोई यज्ञ नहीं कर सकती।

स्पष्ट समझमें आता है कि शास्त्रकारगण एकदेशदर्शी—पक्षपाती नहीं थे। कारण, ऐसा होनेपर वे ब्राह्मण-स्त्री अथवा राजपत्नीको वेदमें अधिकार दे देते।

(ख) भागवतमें आया है—'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।' (१। ४। २५)

'स्त्री, शूद्र एवं अधम द्विज अर्थात् पतित ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यको वेद-श्रवणका अधिकार नहीं है।'

किन्हीं-किन्हींने इस वाक्यको लेकर भागवतकी आलोचना की है, किंतु भागवतकार निर्दोष हैं। कारण, वेदमें ही यह आता है कि स्त्री और शूद्रका वेदमें अधिकार नहीं है। ध्यान देनेकी बात है, द्विज-बन्धुका भी निषेध है। श्रीधरस्वामीने इसका अर्थ किया है—'त्रैवर्णिकेष्वधमाः'।

(ग) शूद्रोंका उपनयन-संस्कार नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकोंका ही उपनयन-संस्कार होता है। 'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, ग्रीष्मे राजन्यम्, शरदि वैश्यम्'—वसन्त ऋतुमें ब्राह्मण बालकका, ग्रीष्ममें क्षत्रियका और शरद्में वैश्यका यज्ञोपवीत-संस्कार करे।'—इस श्रुतिवाक्यके अनुसार शूद्र बालकके लिये यज्ञोपवीत धारण करनेका अथवा गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययनका कोई विधान नहीं है। उपनयनके बाद त्रैवर्णिक बालकोंकी 'द्विज' संज्ञा होती है। किंतु शूद्रका उपनयन नहीं होता, उन्हें 'एकजन्मा' ही कहा जाता है।

(घ) कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीय संहिताका (७। १। १। ६) मन्त्र है—'तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः।' अर्थात् 'शूद्रको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ङ) अथर्व-वेदकी नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद्में भी इसका प्रमाण मिलता है। उसपर विद्यारण्य, आचार्य शंकर तथा उनके परवर्ती विद्यारण्यस्वामीने भाष्य लिखा है। वेदमें स्त्री-शूद्रका अधिकार नहीं है, इस बातको इस उपनिषद्में स्पष्टरूपसे कहा गया है।

'सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति···सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात्, स्त्रीशूद्रः, स मृतोऽधो गच्छति। तस्मात् सर्वदा नाचष्टे, यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव मृतोऽधो गच्छति।'　　(१। ३)

'स्त्री अथवा शूद्रके लिये गायत्री, यजुर्वेदमय महालक्ष्मी-मन्त्र, वेदमन्त्र और प्रणवका उच्चारण अनभिप्रेत है। यदि स्त्री-शूद्र श्रींबीजसे अभिमन्त्रित गायत्री, वेदमन्त्र अथवा प्रणव-प्रभृतिसे अवगत हों तो ऐसा होनेपर वे स्त्री-शूद्र मृत्युके पश्चात् नरकगामी होते हैं। अतएव इनके लिये इन सब मन्त्रोंका पाठ करना निषिद्ध है। यदि कोई आचार्य स्त्री किंवा शूद्रको सावित्री आदिका अध्ययन कराता है, तो उस आचार्यको इसके लिये उसकी स्वयंकी मृत्युके बाद अधोलोकमें जाना पड़ता है।'

अद्वैतवादके मार्गदर्शक आचार्य शंकरने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय स्त्री च शूद्रश्च स्त्रीशूद्रं तस्मै स्त्रीशूद्राय नेच्छन्तीति निषेधं··· कुर्वन् प्रधानोपासनायां स्त्रीशूद्रस्याप्यधिकारं दर्शयति···सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः स मृतः अधः नरकं गच्छतीति प्रत्यवायदर्शनेन निषेधमेव द्रढयति। तस्मात् सर्वदा नाचष्टे इति कदाचिदपि नाचष्टे इत्याचार्यस्य निषेधं दर्शयति। यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैवं कथनेन मृतोऽधोगच्छतीति प्रत्यवायदर्शनेन निषेधमेव इति।'

सुतरां, आचार्यपादके मतसे भी किसी स्त्री या शूद्रको वेद-मन्त्र, ॐकार, गायत्री और लक्ष्मीबीजसहित गायत्रीका उच्चारण करानेसे कोई पुण्य किंवा मङ्गल तो होता नहीं, बल्कि इससे घोर प्रत्यवायभागी होना पड़ता है एवं मृत्युके पश्चात् नरकमें जाना होता है। यदि कोई पुरोहित (ब्राह्मण) इन सब मन्त्रोंका शूद्र अथवा स्त्रियोंसे उच्चारण कराता या इनकी उन्हें दीक्षा देता है तो उसे भी इसी प्रकार नरक-भोग करना होता है।

अधिक क्या, ये उपनिषद्वाक्य अथवा शांकरभाष्य प्रक्षिप्त अथवा पक्षपातपूर्ण हैं, यह बात बिल्कुल नहीं कही जा सकती। शंकर यह कहना भी नहीं भूले कि इन नृसिंहदेवकी जो प्रधान उपासना है, उसमें स्त्री-शूद्रोंका अधिकार है। उनके लिये केवल प्रणव और वेदमन्त्र आदिका प्रयोग करना उचित नहीं है।

(च) ब्रह्मसूत्र (वेदान्त और उत्तर-मीमांसा) भाष्य (१। ३। ३८) के 'अपशूद्राधिकरण'में बहुत कुछ कहनेके बाद शंकर कहते हैं—

'जातिशूद्रस्य अनधिकारात्।' 'यस्य हि समीपेऽपि नाध्येतव्यं भवति स कथमश्रुतमधीयीत।'

'शूद्रोंकी संनिधिमें जब वेदपाठ भी अवैध है, तब फिर वेद-शिक्षाका तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता।' शूद्र-वर्णमें जन्म होनेपर वेदमें अधिकार नहीं होता।

(छ) श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्, स्मृतेश्च।
(१। ३। ३८)

'इतश्च न शूद्रस्याधिकारः। यदस्य स्मृतेः श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधो भवति। वेदश्रवणप्रतिषेधो वेदाध्ययन-प्रतिषेधः, तदर्थज्ञानानुष्ठानयोश्च प्रतिषेधः शूद्रस्य स्मर्यते।'
(शांकरभाष्य)

वेदाक्षरविचारेण शूद्रः पतति तत्क्षणात्।
(पराशरस्मृति १। ७३)

न शूद्राय मतिं दद्यात्।　(मनु० २। १७२)

'शूद्रको (ब्रह्म) ज्ञानका उपदेश न दे।' सुतरां ब्रह्मसूत्रमें भगवान् बादरायण 'वेदश्रवण और अध्ययनकार्यमें शूद्रोंका अधिकार नहीं है'—यह स्मृतियोंके आधारपर कहते हैं। स्मृतिवाक्योंका यहाँ इसीलिये उल्लेख भी किया गया है। फलस्वरूप वैदिक यज्ञके अनुष्ठान अथवा ब्रह्मविद्यामें भी उन लोगोंका अधिकार नहीं है—शंकरका ऐसा मत है।

(ज) श्रीश्रीरामानुजाचार्यने भी बहुत विचारकर निश्चय किया है कि 'शूद्रस्य वेदश्रवणतदध्ययनतदर्थानुष्ठानानि प्रतिषिध्यन्ते······शूद्रस्यानधिकार इति सिद्धम्।' (श्रीभाष्य १। ३। ३८-३९)।

शूद्रोंको जब वेद-श्रवण अथवा अध्ययनका अधिकार नहीं है। लेकिन शंकरके मतसे वेदपाठका अधिकार न रहनेपर भी इतिहास और पुराण-श्रवणका शूद्रोंको अधिकार है। रामानुजका भी यही कहना है कि इतिहास-पुराण-श्रवणद्वारा ही शूद्रोंके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

(झ) बंगालके प्रसिद्ध स्मृति-निबन्धकार रघुनन्दन भट्टाचार्य अपने 'तिथितत्त्व' के ६५ वें पृष्ठपर लिखते हैं कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुपनीत ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य, शूद्र तथा किसी भी वर्णकी स्त्रियोंको वेदमन्त्रोंके उच्चारणका अधिकार नहीं है।' उन्होंने मनुस्मृति तथा नृसिंहपूर्वतापिनी-उपनिषद्के उपर्युक्त वचनोंको उद्धृत किया है।

किंतु उनके मतसे ये लोग अवैदिक अर्थात् पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्र-पाठके अधिकारी हैं। 'वैदिकेतरमन्त्र-पाठे शूद्रादेरप्यधिकारः'।

(ञ) इस तरह कोई-कोई 'शूद्रको ब्रह्मविद्याका— अधिकार नहीं है' ऐसा कहनेवाले शंकरपर आक्षेप करते हैं— यहाँतक कि कोई-कोई ब्रह्मसूत्रके—'अपशूद्राधिकरण' को प्रक्षिप्त कहनेमें भी संकोच नहीं करते।

हम यहाँ साक्षात् धर्मके अवतार महामति विदुरकी बातका स्मरण कराना चाहते हैं।

महाभारतके उद्योगपर्वमें लिखा है कि राजा धृतराष्ट्रको युद्धचिन्तासे नींद नहीं आ रही थी। विदुरने उस समय उन्हें जो अमूल्य उपदेश दिया, वह 'विदुरनीति'के नामसे सुप्रसिद्ध है। ब्रह्मविद्याके सम्बन्धमें धृतराष्ट्रके पूछनेपर विदुर उनसे कहते हैं—

'शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे।'
(उद्योगपर्व ४१। ५)

नीलकण्ठने इसके भाष्यमें कहा है—

वर्णाश्रमक्रममुल्लङ्घ्य ब्रह्मविद्यां नोपदिशेति।

विदुरको स्वतः—बिना उपदेश ग्रहण किये ब्रह्मविद्याका सम्पूर्ण ज्ञान था। फिर भी उन्होंने शूद्रासे उत्पन्न होनेके कारण अपने मुखसे किसीको भी, विशेषकर उच्च क्षत्रिय वर्णवाले राजा धृतराष्ट्रको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना वर्णाश्रम-व्यवस्थाके प्रतिकूल समझा। इसीलिये उन्होंने ब्रह्मलोकस्थ ब्रह्मर्षि सनत्सुजातको स्मरण किया। सनत्सुजात उसी समय ब्रह्मलोकसे आ उपस्थित हुए और धृतराष्ट्रको गम्भीर दार्शनिक तत्त्वका जो उपदेश दिया, वह 'सनत्सुजातीय'के नामसे विख्यात है। शंकराचार्यने इसपर प्रगाढ़ पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखा है।

विचारनेकी बात है, विदुर स्वयं धर्मके अवतार थे। उनकी आध्यात्मिक शक्ति इतनी प्रबल थी कि उनके आह्वानमात्रसे सनत्सुजात तुरंत ऊर्ध्वलोकसे आ गये। फिर भी विदुरने वर्णाश्रम-मर्यादाका भङ्ग नहीं किया, बल्कि अपने दैन्यका ही परिचय दिया।

(ट) पूर्वमीमांसादर्शन (६। १। २-३-५२) में महर्षि जैमिनिने भी ऐसा ही मत प्रकाशित किया है। वहाँ पूर्वपक्ष आदि उपस्थितकर विशद विचारके अनन्तर यह स्थिर किया गया है कि शूद्र वेदपाठ नहीं कर सकता, फिर वैदिक यज्ञ करनेकी बात उठ ही नहीं सकती। (पण्डित भूतनाथ सप्ततीर्थ, 'मीमांसादर्शन', द्वितीय खण्ड ६—३७ पृ०)

(ठ) राममोहन रायने (उस समय राजाकी उपाधि उन्हें नहीं मिली थी) प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जब अद्वैतब्रह्मका चिन्तन करनेके लिये ब्रह्ममन्दिरकी स्थापना की, उस समय निमन्त्रित वेदपाठी ब्राह्मण विदा ले चुके थे। उसके बाद सप्ताहमें एक दिन वेदपाठ होता था। एक अतिरिक्त घरमें आचार्य वेदपाठ करते थे। उसमें शूद्रोंका प्रवेश निषिद्ध था।[1]

1......he (Ram Mohan) had the Veda chanted in the temple from an adjoining room by Brahmins only, where people of inferior castes were not allowed to enter......Nor did he succeed in establishing a body, or a brotherhood, such as would accept his cosmopolitan ideal of work and worship, or would carry out its implications.

—Prasanta Kumar Sen: 'Biography of a New Faith, p. 135)

Further 'A decade passed between the death of Ram Mohan and the advent of Devendra Nath to the Brahma Samaj······The readings from the Vedas by the Brahmins in the private room, the sanctum sanctorum, and the minister's expositions in the public room, accompanied by the singing of the hymns, continued as before. There was no congregation, no regular body of worshippers, no covenant or creed that could hold them together.'

(Ibid, P. 137)

प्रशान्तकुमार सेन लिखते हैं कि 'राममोहन (ब्रह्ममन्दिरमें) पासके ही एक कक्षमात्रमें ब्राह्मणोंद्वारा वेदपाठ कराते थे। उसमें अन्य जातिके किसी भी व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध था। राम-मोहनकी मृत्युके पश्चात् द्वारकानाथ ठाकुरके नेतृत्वमें उसी तरह इस मन्दिरका कार्य चलता था। देवेन्द्रनाथकी आयु उस समय १२ वर्ष थी। वे राममोहनके तिरोधानके दस वर्ष बादतक ब्रह्म-समाजमें नहीं आये। तबतक ब्राह्मणगण उसी गुप्त कक्षमें वेदपाठ करते थे। मन्दिरके साधारण कक्षमें आचार्य प्रवचन करते, कीर्तन होता। राममोहन इस प्रकारका किसी धर्मसंघ या समाजकी जिसके सदस्य उनके मतानुसार चलें और उपासना करें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतएव आधुनिक प्रगतिके कर्णधार रूपसे प्रसिद्ध राममोहन राय भी विश्वास करते थे कि वेदमन्त्रोंका जहाँ पाठ हो, वहाँ शास्त्रानुसार शूद्रोंका रहना उचित नहीं। अधिक क्या, राममोहन स्वयं ब्राह्मण-संतान थे एवं अन्ततक उनके कण्ठमें जनेऊ रहा। उन्हें श्रीमद्भागवत कण्ठस्थ थी।

९. शूद्राणामनिरवसितानाम्। (२।४।१०)

महाभाष्य—आर्यावर्त्तादनिरवसितानाम्।······यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यति, तेऽनिरवसिताः। यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति, ते निरवसिताः इति।

इस सूत्रके भाष्यमें पतञ्जलिने आर्यावर्तका वर्णन किया है 'आर्योंके देश इस आर्यावर्तमें आर्योंका निवास ग्राम, घोष (गोष्ठ), नगर, संवाह (वणिक् प्रधान स्थान) आदिमें था। बौधायन (१।१।७) के अनुसार आर्योंके निवास-स्थानमें, जो ब्राह्मण कुम्भीधान्य अर्थात् मटकेमें केवल छः दिनोंका अन्न संग्रह करनेवाले, अलोलुप, अप्रतिग्रही एवं किसी भी शास्त्र-विद्यामें पारंगत होते थे, वे 'शिष्ट'की श्रेणीमें गिने जाते थे। चण्डाल, मृतपा, डोम्बा (डोम) आदि आर्य-निवाससे बाहर रहते थे। वे यज्ञकर्म करनेके अधिकारी नहीं होते थे। परंतु सत्-शूद्रोंका पञ्चमहायज्ञमें तो अधिकार था, किंतु अग्निहोत्रमें नहीं।

"जिनके जूठे वर्तन माँजकर काममें ले लिये जाते थे, वे 'अनिरवसित' जातिके कहलाते थे। परंतु इसके विपरीत जिनके जूठे वर्तन माँजनेपर भी काममें नहीं लिये जाते थे, वे 'निरवसित' कहलाते थे।"

पाणिनिके ये सूत्र और उनके भाष्यमें अनुमानतः ईसा-पूर्व दशम-नवम शताब्दीके हैं। इसमें उनके कालसे ही नहीं, उनसे भी पूर्ववर्ती समयसे ईसापूर्व दूसरी शताब्दीतक प्रागैतिहासिक भारतकी समाज-व्यवस्थाका एक सुस्पष्ट चित्र उद्घाटित हुआ है। इस चित्रकी पटभूमिका वर्णाश्रम-धर्मके जन्मगत अधिकारवादपर प्रतिष्ठित है। आर्यावर्तमें आर्यनिवासवासी आर्यगण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं सत्-शूद्र) अग्रजन्मा 'शिष्ट' गणोंके निर्देशानुयायी शास्त्रमतसे परिचालित और शासित होते थे। ये शिष्टगण उञ्छवृत्ति*, निर्लोभ, अपरिग्रही, निराशी एवं वैदिकशास्त्र और अध्यात्मविद्याके प्रगाढ़ पण्डित ब्राह्मण थे।

यहाँ विशेषरूपसे जाननेकी बात यह है कि उस युगमें भी आवहमान कालसे भी आहार-विहारके नियम अत्यधिक कठोर थे। उच्छिष्ट और 'अछूत' तब भी थे। यहाँतक कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी भारतमें उच्छिष्ट और छुआछूतका विचार था। इसके पुरातत्त्वसम्बन्धी प्रमाण हैं।[1]

अथवा किसी धर्मग्रन्थ अथवा सम्प्रदायकी रचना नहीं कर पाये थे।

असलमें ब्रह्मसमाजके स्रष्टा राममोहन राय नहीं हैं। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ही इसके प्रतिष्ठाता हैं। उन्होंने भी 'आदि ब्राह्मसमाज'में ब्राह्मणको छोड़कर और किसीको आचार्य नियुक्त नहीं किया। उनका जनेऊ हुआ था और वे गायत्रीके विशिष्ट उपासक थे। पुत्रोंको भी उन्होंने उपनीत किया था।

* संध्याके समय अनाजकी पैठ उठ जानेके बाद मैदानमें बिखरे हुए दानोंको बटोरकर उन्हींसे अपना निर्वाह करनेवाले।

1. "The water supply of the two cities was obtained from excellently constructed wells with brick-lining······Round such well-heads have been found innumerable fragments of mass-produced little clay cups, suggesting that, as in contemporary Hinduism, there was a ritual taboo in drinking twice from the same cup and that each cup was thrown away or smashed after it had been used."

(Piggotts 'Preh istoric India' pp. 170-171)

पुरातत्त्वविद् पिगट् साहब लिखते हैं—

(मोंहजो दड़ो और हरप्पा) इन दोनों नगरोंमें ईंटोंसे बाँधे गये और सुन्दर ढंगसे तैयार किये गये कुओंसे जलका संग्रह होता था।···सर्वसाधारणके व्यवहारमें आनेवाले कुओंके पास मिट्टीके पात्रोंके असंख्य छोटे-छोटे टुकड़े पाये गये हैं। समझनेमें देर नहीं लगती कि आधुनिक हिंदू समाजकी तरह वहाँ भी एक ही मृत्पात्रसे एकाधिक बार जलपान करना धार्मिक आचारके विरुद्ध समझा जाता होगा और व्यवहार करनेके बाद प्रत्येक पात्रको फेंक देते होंगे या फोड़ डालते होंगे।

पृथिवीके और किसी देशमें या दूसरी जातिमें, स्पर्शास्पर्श-विवेक, आहार-शुद्धि, उच्छिष्टबोध आदि आचार-नियम, जिनको आजकलके प्रगतिवादी जन व्यङ्गमें 'छूत मार्ग' कहते हैं, कभी नहीं था। अब भी चीन, जापान, तिब्बत, ब्रह्मा, श्याम प्रभृति देशोंके उपधर्मावलम्बी बौद्ध लोगोंमें भी नहीं है। एकमात्र वर्णाश्रमी समाजके शास्त्रसम्मत आचार-व्यवहारमें मृत्पात्र एक बार ओष्ठ स्पृष्ट होनेपर उच्छिष्ट और अव्यवहार्य हो जाता है और उसे व्यवहारके बाद फेंक देना होता है।

ये टूटे हुए मिट्टीके बर्तन अकाट्य रूपसे प्रमाणित करते हैं कि सिन्धु उपत्यकाके निवासी लोग पाँच हजार वर्षसे भी पहले वैदिक (सनातन) आचारका पालन करते थे। यह स्वतः सिद्ध है, किसी तर्क अथवा संदेहके लिये यहाँ कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चम जाति बराबर ही नगर अथवा गाँवकी सीमापर अथवा सीमासे बाहर निवास करती थी।

१०—अम्बाम्ब······द्वियग्निभ्यः स्थः। ८। ३। ९७।

भाष्य—अम्बायां वेश्यायां तिष्ठति यः सः अम्बष्ठः।

इस सूत्रसे अनुलोम विवाह—ब्राह्मण पिताके औरस तथा वैश्या माताके गर्भसे उत्पन्न संतान 'अम्बष्ठ' नामक संकीर्ण जातिकी सिद्ध होती है। इसीका इसमें उल्लेख हुआ है। उसके अधिकार एवं आचार-व्यवहार मातृवर्णानुयायी वैश्यके-से होते हैं।

११—वर्णाद् ब्रह्मचारिणि। (५। २। १३४)

'ब्राह्मणादि त्रिवर्णोंका ब्रह्मचर्य होता है।'

१२—खट्वा क्षेपे। (२। १। २५)

महाभाष्य—अधीत्य स्नात्वा गुरुभिरनुज्ञानेन खट्वाऽऽरोढव्या। य इदानीमतोऽन्यथा करोति, स उच्यते खट्वाऽऽरूढोऽयं जाल्मो नातिव्रतवान्।

कैयट—असमाप्तेऽध्ययने भूमिशयनार्हः।

उपर्युक्त सूत्रमें वर्णाश्रमी परम्पराका एक मूल रहस्य निहित है।

ब्रह्मचर्यके कालमें खाटपर सोना निषिद्ध है। त्रैवर्णिक ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य बालक पाँच, आठ किंवा बारह वर्षकी आयुसे पचीस—यहाँतक कि तिरपनवर्षकी आयुतक गुरुके घरमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। ब्राह्मणोंको एक-एक वेदके लिये बारह वर्षके हिसाबसे चारों वेदोंतकका अध्ययन करनेमें बारह, चौबीस, छत्तीस—यहाँतक कि अड़तालीस वर्षतक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना पड़ता था। क्षत्रियों और वैश्योंको इनकी अपेक्षा बहुत कम समय गुरुगृहमें रहना होता था। कारण, उनको वेदके अतिरिक्त भी यथाक्रम युद्धविद्या एवं वाणिज्य, शिल्प, पशुपालन आदि व्यवसायोंमें नैपुण्य प्राप्त करना होता था।

नियम था कि सम्राट्-कुमार या करोड़पति, श्रेष्ठिपुत्र अथवा दरिद्र कुटीरवासी ब्राह्मण बटु सभी ब्रह्मचर्याश्रममें भूमिपर शयन करें, समिधा-हरण, काष्ठ-संग्रह, भिक्षाटनके पश्चात् मात्र एक समय भोजन और गुरुकी निष्कपट सेवा करें। वे लोग वेदपाठ और अपरा विद्याके साथ परा-ब्रह्म-विद्या प्राप्त करनेकी साधना भी करते थे। यह स्मरण रखना होगा कि शूद्र बालकको भी गुरुगृह जाकर वेदाध्ययन-रूप ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान न करके भी घरमें रहकर उच्चवर्णके आदर्शके अनुसार कायिक और मानसिक ब्रह्मचर्य अर्थात् उपस्थ-संयमका अधिकार था।

दूसरी ओर बालिकाएँ भी अन्तःपुरमें पुरुष-संसर्गसे दूर रहनेके कारण ऋतुमती होनेसे पूर्व अल्प वयस्में विवाह होनेके परिणामस्वरूप निष्पाप और पवित्र रहती थीं। विवाहसे पहले प्रेम इस देशवासियोंको अज्ञात था। अब भी 'ब्राह्म' विवाहमें शुभदृष्टि एक अत्यावश्यक अङ्ग है; क्योंकि विवाहसे पूर्व स्वामि-स्त्रीका परस्पर मुखदर्शनतक वैदिक संस्कृतिके नियम-विरुद्ध है। पति-पत्नीमें भी जब इस प्रकारका व्यवहार होगा, तब पर-पुरुष अथवा पर-नारीके स्पर्शकी बात तो दूर, चिन्तनतकको वर्णाश्रमी स्त्री-पुरुष प्रायश्चित्तके योग्य अपराध समझते थे और उससे बचते थे—इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है।'

विवाहके बाद भी कुछ दिनतक भूमिशयन करना होता था। पति-पत्नीके एक ही शय्यापर शयन करनेपर भी बीचमें उदुम्बर (गूलर) अथवा अन्य कोई पवित्र काष्ठके एक दण्डद्वारा व्यवधान रखनेका नियम था। कामसूत्रमें वात्स्यायनने आदेश दिया है, 'न त्वकाले व्रतखण्डनम्।—पति-पत्नी अकालमें ब्रह्मचर्य-व्रत भङ्ग न करें।'

इसके पश्चात् स्वामि-स्त्री पलंगपर आरोहण करते थे। किंतु विवाहित जीवनमें भी उन्हें ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिये—यही शास्त्रका आदेश है। स्त्री भोग्या नहीं है वह जगन्माताकी प्रतीक अर्धाङ्गिनी, यज्ञमें पत्नी, धर्मकार्यमें सहधर्मिणी है। कात्यायन-स्मृतिके अनुसार ऋतुगामी गृहस्थगण प्राजापत्य ब्रह्मचारी हैं। (ब्रह्मसूत्र-भाष्य, रत्नप्रभा टीका ३। ४। २। १८)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चारों ही वर्णोंके गृहस्थोंको ऋतुगमन रूप ब्रह्मचर्यका पालन करना कर्तव्य है। यह असिधारा-व्रतसे भी कठिन है। प्रथम कई दिन और पर्व आदि बाद देनेपर केवल संतानोत्पादनके उद्देश्यसे मासमें एक बार मात्र शास्त्रोक्त मन्त्रोंका पाठ करते हुए पवित्र भावसे गर्भाधान करना चाहिये। सच्चे ब्रह्मचारीके मात्र एक बार मिलनेके फलस्वरूप गर्भ स्थापित हो जाता है, जैसे पशुओंका होता है। इसलिये दूसरे मासमें ऋतुदर्शन नहीं होता। गर्भावस्थामें तथा संतानका जन्म होनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जितने दिन बादतक ऋतु-दर्शन न हो, उतने दिनतक स्वामी-स्त्रीका दैहिक सम्बन्ध वर्जित है।

ऐसा होनेपर २५–३० वर्षमें १५–२० बारसे अधिक स्वामी-स्त्रीका दैहिक सम्पर्क होना सम्भव नहीं है। शास्त्रमें भी ऐसा आदेश है कि २-३ संतान होनेपर स्वामी-स्त्री भाई-बहिनकी तरह रहें। हमें राजस्थानकी एक क्षत्रिय रानीकी बात ज्ञात है। उन्होंने स्वामीकी अनुमति लेकर इस आदर्शका अनुसरण किया था।

अधिक क्या, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रममें पूर्ण ब्रह्मचर्यका विधान है तथा पलंगपर सोनेका निषेध है। दोनोंके लिये भूमि-शय्याकी ही व्यवस्था है। केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णके लोग ही वानप्रस्थी होते हैं। वैश्योंके लिये वानप्रस्थका विधान नहीं है। संन्यास-आश्रमके भी अधिकारी केवल ब्राह्मण हैं, अन्य किसी वर्णके लिये संन्यासका विधान नहीं है। ये दोनों जीवन ही अतिकठोर हैं, इसमें संदेह नहीं।

पृथ्वीके अन्य किसी भी देशमें विधवाके पत्यन्तर-ग्रहणमें बाधा नहीं है, किंतु भारतमें सहमरण न होनेपर आमरण ब्रह्मचर्य ही विधवाका कर्तव्य है।

प्रायः सौ वर्ष पहले ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने पराशर-स्मृतिके 'नष्टे मृते प्रव्रजिते'—इस एकमात्र श्लोककी अपव्याख्या कर विधर्मी अंग्रेज सरकारको हिंदू विधवा-विवाह-कानून बनानेमें सहायता दी थी, जब कि ये वाक्य वागुदत्ता कन्याके[1] विवाहविषयक हैं। विधवा-विवाहके सम्बन्धकी वहाँ कोई चर्चा ही नहीं है। इन श्लोकोंके अनुसार वाग्दत्ता कन्याका अन्य पुरुषके साथ विवाह-समाजमें वैध माना गया है।

विवाहके पश्चात् स्वामीके गुम हो जाने, मर जाने या क्लीब, पतित अथवा संन्यासी हो जानेपर शास्त्रमें अन्य पतिका विधान यदि वास्तवमें होता तो यह स्वीकार करना होगा कि एक पतिके वर्तमान रहते दूसरे पुरुषके साथ विवाह एवं विवाह-विच्छेद भी शास्त्रानुमोदित है।

किंतु इस प्रकार पुनर्विवाह अथवा विधवाका विवाह वैदिक समाजमें कभी नहीं था। इस देशके हजारों वर्षके सुदीर्घ इतिहासमें कहीं भी विधवा अथवा सधवाके द्वारा पत्यन्तर-ग्रहणका एक भी उदाहरण क्या कोई दिखा सकता है?

अतएव, वर्णाश्रम-समाजका मूलतत्त्व ब्रह्मचर्य है। स्त्री-पुरुषोंके इस असाधारण संयमके फल-स्वरूप समग्र जातिके लोगोंको अटूट स्वास्थ्य, अमित शक्ति, अलौकिक सौन्दर्य तथा असाधारण स्मृति और धी-शक्ति मिली है। सर्वोपरि अध्यात्म-राज्यमें प्रवेश और उसके कठिन मार्गपर अग्रसर होना भी सहज हो गया है। ब्रह्मचर्य ही भारतीय जातिकी जीवनी-शक्तिका मूल उत्स है।

पाणिनिके सूत्र तत्कालीन और तत्पूर्वकालीन वर्णाश्रमी समाजके इस अत्युत्कृष्ट वैशिष्ट्यका साक्ष्य देते हैं। प्रक्षिप्त-वादका तर्क इस क्षेत्रमें उठ ही नहीं सकता।

उपसंहार

स्थानाभावके कारण अष्टाध्यायीके कुछ सूत्रोंका उल्लेख किया गया है। इस दिग्दर्शनकी चेष्टाके फलस्वरूप निस्संदेह रूपसे यह सिद्ध होता है कि आजसे लेकर तीन—सम्भवतः पाँच हजार वर्ष, यहाँतक कि उससे भी बहुत पहलेसे भारतके वैदिक-धर्मावलम्बी समाजमें वर्णाश्रमधर्म जन्मगत अधिकार-पर प्रतिष्ठित है। वैयक्तिक गुण अथवा कर्मपर कभी भी वर्ण अथवा जातिका निर्णय नहीं हुआ। यही शास्त्रनिर्दिष्ट पथ है। सच्छूद्रगण भी आर्य हैं। यद्यपि शास्त्रानुसार उनको वेद पढ़ने अथवा वैदिक यज्ञमें सम्मिलित होनेका अधिकार नहीं है—यही क्यों, त्रिवर्णकी स्त्रियोंका भी वेदके पढ़नेका अधिकार नहीं है, फिर भी पतिके साथ पत्नी यजमानके रूपमें यज्ञमें सहधर्मिणीके रूपमें सम्मिलित हो सकती है।

---

१. कामसूत्र (बंगवासी) १। ५। ३ (८९–९३ पृष्ठ) देखिये। पण्डितप्रवर पञ्चानन तर्करत्न महोदयने विशद व्याख्या-द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि पराशरस्मृतिके ये श्लोक अनन्यपूर्वा वाग्दत्ताविषयक हैं।

कामसूत्रकार वात्स्यायनने 'कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानो पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति।' (१। ५। १) सूत्रमें सवर्णा अनन्यपूर्वा कन्याके साथ विवाहका अनुमोदन किया है। उनके मतसे अजातरजस्का कन्याका विवाह प्रशस्त है।

इसके बादवाले सूत्रमें अपनेसे उत्तमवर्णवाली कन्या अथवा पर-परिगृहीताका विवाह प्रतिषिद्ध हुआ है। पूर्व कालमें विधवा-विवाह अथवा विवाहविच्छेद समाजबहिर्भूत कार्य था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुतरां, इस व्यवस्थामें किसी प्रकारका पक्षपात नहीं है। वेदमें ही आदेश है कि 'स्त्री-शूद्र वेदमन्त्र, प्रणव आदिका उच्चारण नहीं कर सकते। करनेसे प्रत्यवाय होगा।' अतएव ब्राह्मणोंने समाजपर अपना प्रभुत्व बनाये रखनेके लिये निम्न जातिके लोगोंको अशिक्षित रखा है—इस तर्कका कोई अर्थ नहीं है। इस समय वेद छापे जा रहे हैं, अनेक लोग वेदपाठ और मन्त्रोंके साथ पूजा आदि करते हैं। इस समय तो कोई बाधा ही नहीं है। समाजके एकाकार हो जानेसे नैतिक अधोगति हो रही है, इसमें दो मत नहीं हैं।

पवहारी बाबा—उन्नीसवीं शताब्दीके एक संत

(लेखक—स्वामी श्रीनिर्वेदानन्दजी)

उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतमें जन्म लेनेवाली महान् संतोंकी मण्डलीमें उत्तरप्रदेशमें गाजीपुरके समीप निवास करनेवाले पवहारी बाबाके नामसे स्वामी विवेकानन्दकी जीवनीके पाठकवृन्द भलीभाँति परिचित होंगे। अवश्य ही स्वामी विवेकानन्दने उनके सम्बन्धमें लिखे गये अपने लेखमें तथा अपने पत्रोंमें उनके अज्ञात जीवनपर कुछ प्रकाश डाला है; पर दुःखकी बात है कि उनके पूर्वजों आदिके सम्बन्धमें विस्तृतरूपसे कुछ ज्ञात नहीं है। स्वामीजीके जीवनपर उनकी जो गम्भीर छाप पड़ी है, उसका आभास स्वामीजीकी इन पङ्क्तियोंमें मिलता है—'इन पङ्क्तियोंका लेखक दिवंगत संतका अत्यन्त ऋणी है और ये पङ्क्तियाँ, चाहे वे कितनी ही नगण्य क्यों न हों, उसने एक ऐसे पुरुषकी स्मृतिमें लिखी हैं, जिनकी गणना उन महान् सिद्ध पुरुषोंमें है, जिनके चरणोंमें अपनी श्रद्धा और सेवा समर्पित करनेका उसे अवसर मिला है।'

निम्नलिखित पङ्क्तियोंमें उनके परिवारके लोगोंसे प्राप्त सूचनाओंके आधारपर उन संतके जीवनकी एक संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गयी है। (यहाँपर प्रसङ्गवश यह बात तो कही जा सकती है कि जिस घरके भूगर्भगृहमें पवहारी बाबा रहते थे, वह आज भी उनके कुटुम्बियोंके अधिकारमें है।) किंतु उनके जीवनकी घटनाओंका जो कालानुक्रम स्वामीजीके पवहारी बाबासम्बन्धी विवरणमें मिलता है, उससे यहाँ दिया हुआ कालानुक्रम कुछ भिन्न है।

पवहारी बाबाका जन्म १८४० ई०में उत्तरप्रदेशमें जौनपुरके निकट प्रेमपुर नामक स्थानमें हुआ था। वे अपने पिता श्रीअयोध्या तिवारीके, जो एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे, दूसरे पुत्र थे। उनके दो भाई थे और एक बहिन। शैशवावस्थामें ही उनपर माता (चेचक) का प्रकोप हुआ, जिसके फलस्वरूप उनकी एक आँख चली गयी। काने हो जानेपर भी तीनों भाइयोंमें हरभजनदास ही सबसे सुन्दर तथा गठीले शरीरवाले थे। बचपनमें उनका यही नाम था। शिक्षाके लिये हरभजन अयोध्या तिवारीके छोटे भाई तथा अपने चाचा लक्ष्मीनारायणके पास आये। चाचाजी नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर छोटी आयुमें ही तपस्वीजीवन बितानेका निश्चय करके घरसे निकल आये थे। वे श्रीरामानुजीय विशिष्टाद्वैतमतके श्रीसम्प्रदायान्तर्गत बडकली शाखाके अनुयायी थे। वर्षों यात्रा करते रहनेके बाद वे गाधिपुर (सर्वसाधारणमें प्रचलित नाम गाजीपुर) के दक्षिणमें तीन मीलकी दूरीपर स्थित कुर्था ग्राममें जा बसे। यहाँ सरकारकी ओरसे इनको एक भूखण्ड भी मिल गया था। इस स्थानको पसंद करनेका सबसे बड़ा हेतु था, यहाँपर गङ्गाजीका उत्तरवाहिनी होना। गङ्गाका तट आध्यात्मिक साधनाके लिये अत्यन्त अनुकूल माना जाता है। वे उस समय काफी वृद्ध हो चुके थे, जब हरभजनको वे इस विचारसे अपनी सहायता करनेके लिये लाये थे कि उनके बाद आश्रम और वहाँकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी वही बनेगा। जब लक्ष्मीनारायणको पता चला कि हरभजनकी एक आँख नहीं है, तब वे बोले—'यह एक शुभ चिह्न है। राजा रनजीतसिंहके भी एक ही आँख थी, यह कहकर कि 'हरभजनमें एक महान् योगी बननेके लक्षण हैं,' उन्होंने उनके बड़े भाई गङ्गा तिवारीके बदले इन्हींको अपने पास रखना उचित समझा। उनकी भविष्यवाणीके अनुसार वह बालक आगे जाकर पार्थिव सम्पत्तिका तो नहीं; परंतु योगियोंका तो राजा ही बना।

लक्ष्मीनारायणने भतीजेका उपनयन-संस्कार कराकर उसकी शिक्षाका श्रीगणेश किया। निकट ही रहनेवाले एक पण्डितसे वह संस्कृत पढ़ने लगा। फिर थोड़े वर्षोंतक उसने विभिन्न गुरुओंसे भिन्न-भिन्न वेदों तथा अन्य धार्मिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रन्थोंका अध्ययन किया। अन्तमें उन्होंने विख्यात पण्डित श्रीगोपाल पर्वत परमहंससे एक वर्षतक पञ्चदशीका अध्ययन किया। अध्ययनमें इन्होंने तीव्र अभिरुचिका परिचय दिया। शिक्षकोंके विद्यार्थी-समूहमें सबसे अधिक कुशाग्रबुद्धि इनकी ही थी।

बालक हरभजन आश्रमके कार्योंको करते, श्रीरघुनाथजी तथा अन्य विग्रहोंके लिये भोग सिद्ध करनेमें अपने चाचाके शिष्योंकी सहायता करते और अपने चाचाजीकी सेवा भी करते। यदि गाँवका कोई बालक आ जाता तो उसके साथ खेल लेते, अन्यथा वे अपना समय एकान्तमें गङ्गाके किनारे अथवा पासकी वनस्थलीमें व्यतीत करते। ऐसा कहा जाता है कि बचपनसे ही वे शान्त स्वभावके थे। स्वामी विवेकानन्द-द्वारा लिखित उनके जीवनवृत्तसे विदित होता है कि उनकी विनोदप्रियता कभी-कभी ऐसे क्रियात्मकरूपमें प्रकट होती, जिसका कठोर परिणाम उनके साथी बालकोंको भोगना पड़ता था। 'उनके अनावृत, हँसमुख एवं क्रीडामय विद्यार्थी-जीवनमें कदाचित् ही कोई ऐसी बात दिखायी देती थी, जिससे उनके भावी जीवनकी उस अगाध गम्भीरताका कुछ संकेत मिलता, जिसका पर्यवसान हुआ एक अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण तथा रोमाञ्चकारी बलिदानमें।'

यथासमय वेदों तथा अन्य शास्त्रोंकी शिक्षा समाप्त कर लेनेके बाद हरभजनके पिताजी उनके पास विवाहकी बात करने आये। बालकने संसारसे प्राप्त होनेवाले सुखोंकी नितान्त क्षणभङ्गुरताको भलीभाँति हृदयंगम करके उस आध्यात्मिक सिद्धिको प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था, जिसे प्राप्त करनेके पश्चात् कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। इसलिये पिताके समझाने-बुझाने तथा अनुनय-विनयके उपरान्त भी उन्होंने विवाह करना एकदम अस्वीकार कर दिया और पिताजीको निराश लौट जाना पड़ा।

दिन बीतते गये। फिर एक ऐसा धक्का लगा, जिसने उनके जीवनकी गतिको सदाके लिये बदल दिया। सन् १८५६ में एक दिन उनके चाचा लक्ष्मीनारायणजी इस संसारसे विदा हो गये। वे एक आध्यात्मिक उद्बुद्ध पुरुष थे और उनके सम्पर्कमें आनेसे हरभजनकी आन्तरिक आध्यात्मिक प्रवृत्ति जाग्रत् हो उठी थी। चाचाजीके साकेतगमनने उनके जीवनकी दिशा मोड़ दी। श्रीरघुनाथजी एवं अन्य विग्रहोंकी सेवाका भार अब उनके कंधोंपर आ पड़ा। कुछ मासतक तो उन्होंने गाड़ी चलायी, किंतु शान्ति मिलती न देख, सेवाका भार चाचाजीके अन्य शिष्योंको सौंपकर वे तीर्थयात्रापर निकल पड़े। उन्होंने पूर्वमें पुरी, दक्षिणमें रामेश्वरम्, पश्चिममें द्वारका तथा उत्तरमें बदरीनाथ—इन चारों धामोंकी यात्रा की। द्वारका जाते समय वे मार्गमें कुछ कालके लिये गिरनार पर्वतपर रुके, जो अवधूत गुरु दत्तात्रेयकी वासस्थली बताया जाता है। वहाँ एक गुफामें इनको एक योगीके दर्शन हुए, जिनको कोई नहीं जानता था। उन्होंने इनको योगकी कई गुप्त बातें बतायीं। हरभजनने वहीं रहकर उनकी सेवा करनेकी इच्छा व्यक्त की; किंतु वे किसीको अपने साथ रहनेकी आज्ञा देनेको तैयार नहीं थे। इसलिये हरभजनको वहाँसे चले आना पड़ा। पर महात्माने उनको यह आशीर्वाद दिया कि 'तुम एक महायोगी बनोगे और आधुनिक कालमें तुम्हारी समतामें कोई नहीं ठहरेगा।'

कहा जाता है कि बस्तीसे दूर हिमालयकी एक गुफामें रहनेवाले एक महात्माकी भी इन्होंने सेवा की थी। वे महात्मा भी हरभजनसे बहुत प्रसन्न हुए और हरभजनको उन्होंने कुछ ऐसी जड़ियाँ दीं, जिनको खा लेनेसे बहुत दिनोंतक भूख-प्यास नहीं लगती। तीर्थयात्रा, अध्ययन तथा साधनमें कुछ वर्ष व्यतीत करनेके उपरान्त हरभजन आश्रमपर लौट आये। उनके बचपनके मित्रों एवं अन्य व्यक्तियोंने उनके चेहरेपर भारी परिवर्तन देखा—मुखमण्डल ज्योतिसे जगमगा रहा था। यदि उनके चाचा जीवित होते तो उनको उस दीप्त-ज्योतिमें सर्वोच्च ज्ञानकी वह आभा दीख जाती, जिसे प्राचीन युगके ऋषिने सत्यकामके मुखपर देखा था। कदाचित् उन्होंने बालकका इन शब्दोंमें स्वागत किया होता—'वत्स! तेरा मुखमण्डल ब्रह्मतेजसे उद्दीप्त हो रहा है।'

किंतु उस समय वहाँ कोई ऐसा नहीं था, जो उनके अन्तस्में ज्ञानकी जो ज्योति जगी थी, उसको जान सकता। फिर भी उनमें जो परिवर्तन हुआ था, वह उनके चतुर्दिक् रहनेवाले व्यक्तियोंके मनमें स्वयमेव उनके प्रति आदरका भाव उत्पन्न करा देता था। पवहारी (अब हम इसी नामसे उनका उल्लेख करेंगे; क्योंकि वे इसी नामसे प्रसिद्ध हुए) ठाकुरकी पूजा, अतिथियोंकी सेवा तथा अन्य कार्योंमें जुट गये। उनकी सभी बातोंमें एक परिवर्तन आ गया था। प्रत्येक जीवधारीको वे 'बाबा' कहते, सभी स्त्रियोंको 'माताजी' तथा अपनेको 'दास' कहते। 'सर्वं विष्णुमयं जगत्'—यह सिद्धान्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाक्य उनके लिये एक अपरोक्ष एवं ठोस अनुभूति बन गया था। कुछ वर्षों बाद एक दिन उनको एक काले विषधरने काट लिया और ऐसा मान लिया गया कि वे मर चुके हैं। कई घंटेके बाद जब चेतना लौटी, तब उनके मित्रोंने जानना चाहा कि क्या बात थी; उनका उत्तर था—'विषधर प्रियतमका दूत था।' उन्होंने बताया कि 'एक मूषक बाबा दासकी गोदीमें आकर गिर पड़े, जिन्हें दासने अपने वस्त्रोंमें छिपा लिया। इससे उसका पीछा करनेवाले विषधर बाबा कुपित हो गये और उन्होंने आकर दासके कंधेमें काट लिया।' उनकी जागतिक दृष्टि वेदान्तके 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—इस सिद्धान्त की अनुगामिनी थी।

एक बार आश्रममें चोर घुसे और मूर्तियों, आभूषणों आदिको चुराकर जैसे ही वे चंपत होनेवाले थे कि पवहारी बाबा कमरेमें आ गये। चोर गठरी पटककर भागे। पवहारी बाबा दौड़कर उनके पास पहुँचे और अत्यन्त विनयसे बोले, 'आप बाबा लोग पधारे हैं; यदि आपको इन वस्तुओंकी आवश्यकता हो तो ये आपकी ही हैं। बाबा लोग इन्हें छोड़े क्यों जा रहे हैं? इस दाससे क्या अपराध हुआ है? कृपया इन वस्तुओंको लेते जाइये, ये आपकी ही हैं।' इत्यादि। उनकी दृष्टिमें प्रत्येक प्राणी—चाहे वह साँप हो, चूहा हो या चोर—सभी 'बाबा' अर्थात् भगवान् थे।

ठाकुरकी पूजा, अतिथियोंको भोजन कराना तथा शास्त्रोंको पढ़कर उसकी व्याख्या करना ही उनका दैनिक कार्यक्रम बन गया था। संध्याके समय आश्रमके पास ही वे एक कँटीली झाड़ीमें जाकर ध्यान किया करते थे। फिर संध्या-आरतीके बाद, जब सब लोग घर चले जाते, वे सारी रात गङ्गाके किनारे योगसाधना, प्रार्थना एवं ध्यानमें बिताकर पौ फटनेसे पहले ही आश्रममें आकर दैनिक कार्यक्रममें निरत हो जाते। ठाकुरके लिये स्वादिष्ट सामग्रीका निर्माण करके वे अतिथियोंको प्रसादरूपमें परस देते। उनका अपना आहार केवल काली मिर्चका रस तथा दूध होता था। तभी लोगोंने उनको 'पवहारी बाबा' कहना आरम्भ किया—पवहारी अर्थात् दुग्धाहारी (पय-आहारी)। कुछ कालतक वे केवल बिल्व पत्रका रस पीकर ही रहे।

कुछ कालके लिये पुनः वे आश्रमको छोड़कर वाराणसी चले गये। वहाँ उन्होंने एक विद्वान् संन्यासी निरञ्जन स्वामीसे अद्वैत सिद्धान्तका अध्ययन किया। गाजीपुरके पास एक गुफामें रहनेवाले एक संतसे उन्होंने योगके विषयमें भी अपने ज्ञानकी अभिवृद्धि की। वहाँसे लौटकर उन्होंने आश्रममें एक लंबी सुरंग खुदवायी। योगसाधना करते हुए अब अपना अधिकांश समय वे इसीमें बिताते।

कुछ समय बाद योगमें दीक्षा लेनेके लिये वे गिरनारकी ओर चले। मार्गमें अयोध्या पहुँचनेपर उन्हें पता चला कि जिस गुरुके पास वे जा रहे थे, वे संसारसे विदा हो चुके थे। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि अयोध्यामें ही एक वैष्णव संतसे दीक्षा लेकर वे आश्रमपर लौट आये। अपने चाचाकी भाँति वे भी श्रीसम्प्रदायकी बडकली शाखाके अनुयायी थे। धीरे-धीरे उनकी आध्यात्मिक साधनाएँ दिन-प्रतिदिन उग्रतर होती गयीं। वे गुफामें ही लगातार कई दिन बिता देते और गाँववालोंकी प्रार्थनापर केवल एकादशीके दिन बाहर आते। मन्दिरका द्वार कभी किसी दूसरे दिन नहीं खोला जाता था। गाँवके लोग दूध, फल इत्यादि लाते और बगलके कमरेमें रख जाते। उनकी ख्याति फैलती जा रही थी। उनके बड़े भाई गङ्गा तिवारी उनकी सेवा करनेके लिये कुर्थामें ही आकर रहने लगे। क्रमशः उनका पखवारेमें एक बार भी बाहर आना बंद हो गया। अब वे वर्षमें एक बार बाहर आते और उस दिन एक उत्सव-सा मनाया जाता। तीर्थयात्रा करनेकी प्रवृत्ति फिर उनमें जगी और वे पुरीकी ओर रवाना हुए। मार्गमें वे अस्वस्थ हो गये और मुर्शिदाबादके समीप एक गाँवमें ठहरे। गाँववालोंने नदीके तटपर एक झोपड़ी बना दी और एक भक्तने अच्छी सेवा की। बाबाजीने उससे बँगला सीखी और लौटते समय बंगालके वैष्णवमतपर कई ग्रन्थ अपने साथ लाये। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृत तथा अन्य ग्रन्थोंका अध्ययन किया। तमिळ तथा तेलुगुका भी उनको प्रकाण्ड ज्ञान था। दक्षिण भारतके 'आळवार' नामक संतोंकी वाणीका उन्होंने मूलमें ही अध्ययन किया था। कुर्थावाली अपनी गुफामें वापस आनेपर पवहारी बाबाका दर्शन प्राप्त करना कठिन नहीं था। इसलिये नित्य दूर-दूरसे लोग उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये आने लगे। गुफाद्वारके पीछेसे ही वे उनसे बातें करते तथा उनके प्रश्नोंका उत्तर देते। सभी प्रकारके साधु-संन्यासी आते, जिनकी देख-भाल आश्रमकी व्यवस्था करनेवाले उनके अग्रज करते। अतिथि-पूजा एक प्रमुख कार्य था। कोई बिना भोजन किये वापस नहीं जाता था। इसी बीच गङ्गाजी अपनी धारा किंचित् बदलकर पूर्वकी ओर बहने लगी थीं। इस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो जमीन गङ्गाजीने छोड़ दी, उसको गङ्गा तिवारीने जोतना आरम्भ कर दिया। बादमें सरकारने उस अतिरिक्त भूमिको भी आश्रमको दे दिया, जिससे बिना कठिनाईके वे लोग अतिथियोंका सत्कार करनेमें समर्थ हो गये।

बंगालसे लौटनेके बाद पवहारी बाबा अपने एकान्तवाससे पूर्ववत् एकादशीके दिन बाहर निकलते थे। एक बार सन् १२२४ में वे नियत तिथिपर अपनी गुफासे बाहर नहीं आये और बहुत दिनोंतक भीतर ही रहे। पहले जब वे गुफासे बाहर आनेको होते तो बाहरके लोगोंको उनकी होमाग्निमेंसे निकलनेवाले धूएँको देखकर इसका पता चल जाता। वे पूजाकी भी व्यवस्था करवाते तथा लोगोंसे द्वारके भीतरसे बात करते। परंतु इस बार कोई क्रिया देखनेमें नहीं आयी। लोगोंने अनुमान किया कि उन्होंने शरीर त्याग दिया होगा, परंतु किसीका साहस नहीं होता था कि दरवाजा तोड़कर भीतर जाय। इस प्रकार दिन बीतते गये और चार-पाँच वर्षोंके पश्चात् एक दिन जब घण्टावादनके साथ ठाकुरकी पूजा चल रही थी, उसके पश्चात् ही पवहारी बाबा बाहर आये। लोगोंके हर्षका पार नहीं रहा। एक विशाल भोजका आयोजन हुआ तथा अनेक साधुओं, ब्राह्मणों और दरिद्रनारायणको भोजन कराया गया।

एक बार फिर आश्रम चहल-पहलसे गूँज उठा। पवहारी बाबा प्रतिदिन शास्त्रोंकी व्याख्या करते थे। एक दिन गङ्गातटपर अरुणोदयके पूर्व ही यौगिक साधना करते समय उन्होंने वहाँपर एक व्यक्तिको देखा। इस विक्षेपसे उनके स्वास्थ्यपर बुरा असर पड़ा और कई सप्ताहतक उनको अपनी साधना स्थगित करनी पड़ी। तब उन्होंने आश्रमके भीतर ही एक कुआँ खुदवाकर वहीं स्नान करनेका निर्णय किया। कहा जाता है, सारा कुआँ उन्होंने अपने-आप ही खोद डाला। आज भी इस कुएँका पानी अच्छा है और काममें लिया जाता है। कालान्तरमें उन्होंने एक बड़ा भारी यज्ञ किया, जो महीनेभरतक चला। इसमें भाग लेनेके लिये सैकड़ों साधु, संन्यासी, गृहस्थ और विद्वज्जन वहाँ एकत्रित हुए। आश्रमके निकट ही तंबुओं तथा कुटियाओंकी एक नगरी खड़ी कर दी गयी। विद्वज्जनोंने शास्त्रीय विषयोंपर विचार-विमर्श करनेकी योजना बनायी, जिसमें वाद-प्रतिवाद चलता था। पवहारी बाबासे भी उसमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की गयी, परंतु उनसे विनीत उत्तर यही मिला कि 'इस दासको क्या आता है?' अन्तिम दिन बाबाने स्वयं साधुओंके चरण धोये, उनकी पूजा की, उन्हें वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ उपहारमें दीं। एक बड़ा भंडारा करके यज्ञको सम्पन्न किया गया।

यज्ञोपरान्त पवहारी बाबा एक बार फिर अपनी कोठरीमें बंद हो गये। आश्रमके पीछे उन्होंने एक गड्ढा खुदवा रखा था। एक दिन उन्होंने भीतरसे कहा कि यदि दरवाजेके सामने गीली मिट्टी जुटा दी जाय तो यह दास कुछ काम करना चाहता है। दूसरे दिन लगभग ३० मजदूर कामपर लगाये गये। संध्याके पहले ही दरवाजेके पास उन लोगोंने गारेका अंबार लगा दिया और दूसरे दिन प्रातःकाल लोगोंने क्या देखा कि सारा गारा उठ गया है तथा आश्रमकी चहारदीवारी तैयार खड़ी है। रातभरमें ही बाबाने चमत्कार कर दिया था। एक घटना और उल्लेखनीय है। उन्होंने एक काठकी कुटिया बनानेको कहा। बढ़ई लग गये और एक सुदृढ़ कुटिया बनकर तैयार हो गयी। लगभग चालीस बलिष्ठ व्यक्तियोंने मिलकर उसे उठाया और चहारदीवारीके उस पार ऊपर-ही-ऊपर ले जाया गया। भीतरसे बाबाने अकेले ही उसे नीचे उतार लिया।

धैर्य, पवित्रता तथा लगन—अपने गुरु-भाइयों तथा अन्य व्यक्तियोंको लिखे गये पत्रोंमें धैर्य, पवित्रता एवं तत्परता—किसी भी उद्योगमें निश्चित सफलता दिलानेवाले इन तीन साधनोंपर जोर देते हुए स्वामी विवेकानन्द कभी थकते नहीं थे। पवहारी बाबामें ये सभी गुण प्रचुर मात्रामें थे। चाहे वे भगवान्‌की पूजा करते या अपने बर्तन माँजते, वे हाथमें लिये हुए काममें पूर्णरूपमें तल्लीन हो जाते। वे कहा करते थे—'साधनमें ऐसा अनुराग और उसके करनेमें ऐसी सावधानी होनी चाहिये मानो वह साध्य ही हो। इन्हीं गुणोंके कारण उन्होंने प्रत्येक धंधेमें दक्षता प्राप्त कर ली। पत्थरका काम, बढ़ईगिरी, राजमिस्त्रीका काम आदि अनेक धंधे उनको आते थे और वे सभी काम पूरी दक्षताके साथ करते थे। भगवान्‌के आभूषण बनवानेके लिये वे सुनारके पास उनके मिट्टीके नमूने अपने हाथसे बनाकर भेजते थे। सुनार उनकी सुन्दरतापर दंग रह जाते थे तथा बाबाके मिट्टीके नमूनोंके अनुरूप आभूषण बनानेमें उनको कई बार बनाना और बिगाड़ना पड़ता था।

बाबाकी शारीरिक क्षमता तथा बल अतिमानुषताकी सीमाका स्पर्श करते थे। सारा गारा ढोकर एक रातमें चहारदीवारी खड़ा करने तथा चालीस व्यक्तियोंद्वारा उठायी हुई कुटियाको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकेले उतारनेका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। एक घटना उनके चलनेकी गतिका दिग्दर्शन कराती है। एक बार वे प्रयागके कुम्भमेलेमें बीमार पड़ गये। अच्छे होनेपर एक रातमें ही वहाँसे ११२ मील दूर कुर्थावाली अपनी गुफामें आ पहुँचे।

एकान्तवासके दीर्घकालेमें बाबाजी विविध धार्मिक ग्रन्थों तथा लेखन-सामग्रीकी माँग किया करते थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकोंकी स्वच्छ एवं सुन्दर अक्षरोंमें प्रतिलिपि की है। उनमेंसे कई तो जल गयीं अथवा नष्ट हो गयीं, किंतु कुछ अब भी आश्रममें सुरक्षित हैं। कुछके नाम ये हैं—श्रीमद्भागवत श्रीधरीटीकासहित, वेदान्तसूत्रोंपर श्रीरामानुजका श्रीभाष्य, रामकृष्णकी टीकासहित श्रीविद्यारण्यकी पञ्चदशी और अध्यात्मरामायण—ये सब संस्कृतमें हैं तथा भक्तिपर पद्यमें विरचित 'प्रेम-विलास' हिंदीमें। ये सभी पत्राकार हैं। इतने बड़े-बड़े ग्रन्थोंको विशद अक्षरोंमें लिपिबद्ध करनेके लिये कितना धैर्य उनमें रहा होगा। केवल लिखना ही नहीं, जो कुछ भी वे करते थे, सबमें सौन्दर्य भर देते थे। उनकी वाणी भी बड़ी मधुर थी। स्वामी विवेकानन्दके शब्दोंमें, ऐसी मधुर जैसी कभी सुनी नहीं गयी। ऐसे असाधारण योगीके जीवनकी संध्या समीप आ रही थी। अपने जीवनके अन्तिम कुछ वर्षोंमें उन्होंने अपनेको मनुष्योंकी दृष्टिसे अलग रखा। जब कभी वे अपनी गुफाके ऊपर आते तो दरवाजेके भीतरसे ही बात कर लिया करते थे। परंतु वे कभी बाहर नहीं आये। एक बार उन्होंने अपने भतीजे बद्रीनारायणसे कहा कि 'इस दासके शरीरत्यागनेके बाद तुम्हींको बद्रीनारायणकी पूजाका कार्य तथा इस दासकी पुस्तकोंकी सँभाल करनी चाहिये।'

विक्रम-संवत् १९५५ ज्येष्ठकी अमावास्या, शुक्रवारके दिनकी बात है। प्रत्यूषवेलामें गङ्गा बाबा, बद्रीनारायण तथा कुछ अन्य लोग स्नान करके बाहर बैठे थे। उन्होंने गुफाके भीतरसे एक भारी धूएँकी धारा निकलती देखी। उन्होंने सोचा बाबाजी हवन कर रहे होंगे। कुछ ही दिन पहले भक्त-गण प्रचुर मात्रामें हवन-सामग्री तथा घी ले आये थे।

थोड़ी ही देरमें उन्होंने लपटोंको ऊपर उठते देखा। बद्रीनारायणने चहारदीवारीके पास जाकर चिल्लाकर आग बुझानेकी आज्ञा माँगी। बाबाजीने कोई उत्तर नहीं दिया। जब उन्होंने देखा कि आग बुझ सकनेकी सीमासे बाहर जा रही है, तब बद्रीनारायणने एक पत्थरपर चढ़कर भीतर झाँका। काठकी कुटिया धू-धूकर जल रही थी। उन्होंने बाबाजीको अपनी जटामें घी डालते हुए तथा शरीरपर कुछ मलते देखा। बद्रीनारायण फिर चिल्लाये, 'यदि आपकी आज्ञा हो तो हमलोग आगको बुझानेका उपाय करें।' बाबाजीने केवल सिर उठाकर उनकी ओर देखा तथा हाथमें कमण्डलु लेकर धधकती हुई कुटियामें प्रवेश कर गये। इसी बीच लपटोंको देखकर बहुत-से गाँववाले दौड़कर आ पहुँचे थे। बद्रीनारायणने जो कुछ देखा था, बताया; परंतु किसीका भी साहस चहारदीवारीके भीतर जानेका नहीं हुआ। अन्तमें कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके आग्रह करनेपर दरवाजा तोड़ा गया। अंदर जानेपर उन्होंने पवहारी बाबाको अपने हवनकुण्डके सामने पद्मासनसे बैठे देखा। काठकी कुटिया जल रही थी। उनका शरीर भी जल रहा था। घीके कुछ टीन, हवनसामग्री तथा उनकी कुछ पुस्तकें उनके पास पड़ी थीं। थोड़ी देर बाद पवहारी बाबाका ब्रह्मरन्ध्र फट गया और उनकी ऐहिक लीला समाप्त हो गयी। उस संतने, जो विनम्रताकी मूर्ति थे, मरनेके बाद भी किसीको कष्ट देना नहीं चाहा और आर्योंकी इस अन्त्येष्टि-क्रियाको भी अपने तन-मनसे पूरे सजग रहते हुए कर डाला। ऐसा ही उदाहरण प्राचीन कालमें शरभङ्ग मुनिने प्रस्तुत किया था। उन संतके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए स्वामी विवेकानन्दजीने लिखा है कि जिन महासिद्धोंसे स्नेह करने तथा उनकी सेवा करनेका सौभाग्य उनको प्राप्त हुआ है, उनमेंसे एक वे भी थे।

जहाँ उन्होंने अपना शरीर-विसर्जन किया, वहाँ आज भी उनकी स्मृतिमें आरोपित एक शिलालेखको हम देख सकते हैं। आज वहाँ जो इमारत खड़ी है, उसे तथा आस-पासकी जमीनको घेरनेवाली चहारदीवारीको बादमें पवहारी बाबाके एक भक्तने बनवाया था।

उनके जीवनकालमें बहुत-से बड़े-बड़े लोग उनके पास आये। उनमें सभी सम्प्रदायोंके भक्त, संत, विचारक तथा धार्मिक सुधारवादी सभी थे।

उनके जीवनकी कुछ घटनाएँ

प्रत्येक योगी अथवा आध्यात्मिक पुरुषके अंदर कुछ अलौकिक सिद्धियाँ रहती हैं। परंतु सच्चा योगी उनका प्रदर्शन कदाचित् ही कभी करता है। फिर भी कुछ घटनाएँ घट ही जाती हैं। पवहारी बाबा अथवा उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चर्चाके सम्बन्धमें अनेक अलौकिक घटनाएँ सुनी जाती हैं; हम उनमेंसे केवल दोका ही यहाँ उल्लेख करेंगे—

महात्मा लक्ष्मीनारायणके कुर्थामें बस जानेके विषयमें एक कथा है। गङ्गाके किनारे-किनारे पर्यटन करते हुए वे कुर्था पहुँचे। शान्त जगह थी और वहाँ एक घना जंगल था तथा गङ्गाका उत्तराभिमुख होकर बहना बड़ा शुभ माना जाता था। इसलिये उनको वह जगह पसंद आ गयी और वहाँ तीन रात रहकर तब आगे बढ़नेका विचार किया। पहले ही दिन, जब वे पूजा कर रहे थे, शिकारके लिये आये हुए एक सरकारी अधिकारी तथा कुछ अन्य व्यक्तियोंने उनको देखा। अधिकारी अंग्रेज था और उसने उनसे तुरंत वहाँसे चले जानेको कहा; क्योंकि वहाँ ठहरना खतरेसे खाली नहीं था। लक्ष्मीनारायणने कहा कि हमारी इच्छा यहाँ तीन रात रहनेकी है, इसके बाद हम चले जायँगे। अधिकारी साधुओंको घृणाकी दृष्टिसे देखता था, अतः उनका वहाँ रुकना उसको अच्छा नहीं लगा। उसने आदेश दिया कि 'पूजा समाप्त करनेके बाद तत्काल यहाँसे चले जाओ, अन्यथा परिणाम बहुत बुरा होगा।' घर लौटनेपर अधिकारीने देखा कि उसके घरके एक व्यक्तिको अचानक कोई अद्भुत रोग हो गया है, जिसका निदान डाक्टर लोग नहीं कर पा रहे हैं। वह बहुत चिन्तित हुआ। तब उसके चपरासीने संकेत किया कि 'आपने एक साधुको रुष्ट कर दिया है, शायद उन्होंने शाप दे दिया हो। उनसे क्षमा-याचनाके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' लाचार होकर अधिकारी लक्ष्मीनारायणके पास भागा हुआ गया और उनके चरणोंपर गिर पड़ा। संत यही कहते रहे कि 'हमें कुछ भी नहीं मालूम, शाप देना तो हम जानते ही नहीं; अतएव हम क्या उपाय बतलायें?' फिर भी अधिकारीके बार-बार आग्रह करनेपर प्रसादरूपमें उन्होंने थोड़ी-सी भभूति दी। जब अधिकारी घर लौटा तो यह देखकर चकित हो गया कि प्रसादके घर पहुँचनेके पूर्व ही वह व्यक्ति चंगा हो गया था। जिस रहस्यमय ढंगसे रोग हुआ था, उसी रहस्यमय ढंगसे वह चला भी गया। दूसरे दिन उसने जाकर लक्ष्मीनारायणसे प्रार्थना की कि 'आप स्थायीरूपसे यहीं निवास करें' और उनके नाम उसने वहाँ एक भूखण्ड भी लिख दिया। कुर्थामें लक्ष्मीनारायणजीका निवास इस प्रकार घटित हुआ।

पवहारी बाबाके विषयमें हम निम्नलिखित घटनाका उल्लेख कर देना चाहते हैं—एक बार एक बृहद् भंडारेका आयोजन हुआ, जिसमें बहुसंख्यक साधु सम्मिलित होने जा रहे थे। दरवाजेके पीछेसे ही पवहारी बाबा सारी तैयारीका निर्देश कर रहे थे। जब भंडारेका केवल एक सप्ताह रह गया, तब उनके भाई गङ्गा तिवारीने उनको यह सूचना दी कि 'हमलोग कुछ कुएँ खोदनेकी बात सोच रहे हैं; क्योंकि गङ्गाजीके दूर होनेके कारण साधुओंको नहाने-धोनेमें असुविधा होगी। भोजन-सामग्री सिद्ध करनेके लिये भी जलका निकट होना आवश्यक है। ग्रीष्मऋतुका मध्य है, अतः गङ्गासे जल लानेका प्रश्न ही नहीं उठता। तप्त बालुकामय लंबे मार्गको किस प्रकार तय किया जायगा?' पवहारी बाबाने पूछा—'तुमने गङ्गा-माताको निमन्त्रण दिया है?' जब उन लोगोंसे नकारात्मक उत्तर मिला, तब उन्होंने आग्रह किया कि 'ऐसा अवश्य होना चाहिये था' और उनके आदेशानुसार उनके भाईने प्रचुर मात्रामें मिष्टान्न, फल, एक अच्छी साड़ी, पुष्प-माला तथा अन्य पूजन-सामग्री लेकर नावद्वारा बीच-धारामें जाकर गङ्गामाताकी पूजा की। उत्सवकी शोभा बढ़ानेके लिये पधारनेकी लिखित प्रार्थनाके साथ सारी सामग्रीको उन्होंने पयस्विनीमें विसर्जित कर दिया। निस्संदेह कुछ लोग इस घटनापर हँसे। किंतु उनको पवहारी बाबाके वचनोंपर विश्वास था। अब केवल तीन दिन रह गये थे। गङ्गा बाबा चिन्तित हो उठे। किंतु पवहारी बाबाने उनके भयको शान्त किया। आश्रमके सामने एक सूखा नाला था, जिसमें वर्षाके दिनोंमें दस मीलकी दूरीसे पानी बहकर आता था और आश्रमसे आधमील उत्तरकी ओर गङ्गाजीमें गिरता था। यह नाला आज भी देखा जा सकता है। जब गङ्गाजीमें बाढ़ आती है, नालेमें पानी चढ़कर काफी दूरतक ऊपर आ जाता है। किंतु गरमीके दिनोंमें तो नहरमें गङ्गाके पानीके चढ़नेकी कोई सम्भावना ही नहीं रहती। अब चाहे पवहारी बाबाकी प्रार्थना अथवा उनकी सिद्धिका प्रताप रहा हो, गङ्गाजी क्रमशः पश्चिमकी ओर बढ़कर थोड़ा-थोड़ा करके नालेमें चढ़ने लगीं और तीसरे दिन, जिस दिन भंडारा था, नाला लबालब भर गया। भंडारा बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ और दूसरे दिन नाला पुनः सूख गया। अपने लाड़लेके उत्सवकी शोभा बढ़ानेके लिये गङ्गामाताको आना ही पड़ा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम देख चुके हैं कि पवहारी बाबा सबमें भगवत्ताका दर्शन करते थे और सबको 'बाबा' कहकर पुकारते थे। उनके भूघरेमें विषधर सर्प तथा चूहे रहते थे। जन्मजात शत्रु होते हुए भी वे उनकी उपस्थितिमें वैरविरहित होकर रहते थे। जिस दिन पवहारी बाबाने अपना शरीर विसर्जन किया, उस दिन अंदर जानेपर लोगोंने देखा कि एक ही प्यालेमेंसे एक नाग और एक चूहा दूध पी रहे थे। पतञ्जलिका सूत्र—'तत्संनिधौ वैरत्यागः' चरितार्थ हो रहा था। लोग कहते हैं कि आज भी गुफामें विषधर रहते हैं और कोई भी भीतर नहीं जाता। जिस वेदीपर पूजाके विग्रह विराजित हैं, वह गुफाके द्वारके समीप ही है, जो केवल काठके कुछ पटरोंसे ढका रहता है। पुजारी लोग वहीं बैठकर पूजा-आरती करते हैं; किंतु कभी नाग वहाँ नहीं आता। बस, एक या दो बार जब गुफाके भीतर जानेकी चेष्टा की गयी, तब लोगोंने फुफकारकी आवाज सुनी और वापस भगे। इस प्रकार आज यह पृथ्वीके नीचेकी सुरंग, जिसमें वे महान् संत रहे और जहाँ उन्होंने अपने शरीरको अग्निमें होम दिया—एक रहस्यकी वस्तु बनी हुई है; क्योंकि उसमें प्रवेश करनेका साहस किसीमें नहीं।

संसारके लिये ऐसे संतोंके जीवनका महत्त्व असीम है, चाहे बाहरसे देखनेमें वह भले ही अनुपयोगी प्रतीत हो; क्योंकि विवेकानन्दके यह पूछनेपर कि 'संसारका उपकार करनेके निमित्त आप बाहर निकलकर सबको उपदेश क्यों नहीं करते?' पवहारी बाबाने स्वयं कहा था कि 'क्या तुम्हारी यह धारणा है कि शारीरिक सेवा ही एकमात्र सेवा है? क्या शारीरिक चेष्टाके बिना ही एक आत्मा दूसरी आत्माओंकी सेवा नहीं कर सकती?' (अंग्रेजी 'प्रबुद्ध भारत'से अनूदित)

श्रीललिताम्बाका ताटङ्क

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

कारणादिके बिना कार्योत्पत्तिनिर्देश विभावनालंकारका लक्षण है। आलंकारिकोंने इसके ६ भेद बतलाये हैं। ये (भेद) उत्तरोत्तर, पूर्व-पूर्वापेक्षया विशेष चमत्कृत तथा अद्भुत हैं। जैसे असम्पूर्ण—न्यून कारणसे कार्योत्पत्ति, किंचित् प्रतिबन्ध होनेपर भी कार्योत्पत्ति, महत्प्रतिबन्ध या कारणान्तरसे भी कार्योत्पत्ति आदि विशेष अद्भुत एवं चमत्कारपूर्ण हैं। इसी प्रकार चौथी विभावना वह है, जिसमें सर्वथा विपरीत कारणोंसे ही अभीष्ट कार्योत्पत्ति निर्दिष्ट होती है। जैसे—

उदिते कुमारसूर्ये कुवलयमुल्लसति भाति नक्षत्रम्।
मुकुलीभवन्ति चित्रं परराजकुमारपाणिपद्मानि॥

(कुवलयानन्द ८१क)

अर्थात् 'कुमार (राजकुमाररूपी) सूर्यके उदय होनेपर कुमुदिनी (वस्तुतः भूमण्डल) विकसित होती है और नक्षत्र प्रकाशित होते हैं (अन्य क्षत्रिय सुशोभित नहीं होता)।' प्रसन्नराघव नाटकके—

नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनम्[2]।

तथा मानसके 'कुबलय बिपिन—
बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥'

(५। १४। २)

—आदि उदाहरण भी इसी प्रकारके हैं। पर आलंकारिकोंकी दृष्टिमें इस चतुर्थी विभावनाका सर्वोत्तम उदाहरण है, सौन्दर्यलहरीका अट्ठाईसवाँ श्लोक, जो इस प्रकार है—

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमुखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं जननि तव ताटङ्कमहिमा॥

(सौन्दर्यलहरी २८)

अर्थात् 'महाभयदायक जरा-मृत्युको शमन करनेवाली सुधाका पान करनेपर भी ब्रह्मा-इन्द्रादि देवगण तो क्षीणपुण्य होनेपर विशीर्ण होकर भूमण्डलपर आ जाते हैं। पर कराल हालाहलका पान करके भी तुम्हारे पति शिव अमर हो गये, इसमें हे ललिते! एकमात्र तुम्हारे ताटङ्ककी ही महत्ता—विशेषता है।'

---

१. इसी प्रकार कारण होनेपर भी कार्योत्पत्तिका न होना 'विशेषोक्ति' अलंकार है। सफलता-विफलतामें ही दोनोंके चमत्कार प्रदृष्ट होते हैं।

२. कुछ टीकाकार इसमें 'निरङ्गरूपक' तथा 'उपमालंकार' भी मानते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्तु ! अब यह ललिता कौन हैं तथा इनका ताटङ्क क्या है, संक्षेपमें यहाँ इसीपर विचार किया जायगा ।

'हृदये ललिता देवी' आदि प्रयोग सप्तशती-कवच, गायत्रीसहस्रनाम, देवीसहस्रनाम आदिमें और ललिता-सहस्रनामके अन्तमें मिलते हैं । ललिता वास्तवमें षोडशी-महाविद्या, श्रीविद्या, बालात्रिपुरसुन्दरीका ही नामान्तर है । ललितोपासना या श्रीविद्योपासनापर 'ललितात्रिशती'-'सहस्रनाम'-'पञ्चाङ्ग', 'ललितोपाख्यान', 'श्रीविद्यासपर्या-पद्धति'-'हृदय'-'स्तवरत्नमाला', 'श्रीविद्यार्णव', 'नित्यार्चन', 'षोडशी-शतनाम'-'पटल'-'पद्धति'-'पञ्चाङ्ग', 'त्रिपुरारहस्य', 'वरिवस्यारहस्य', 'त्रिपुरसुन्दरी-मानस-पूजा', 'पञ्चस्तवी', 'भावनोपनिषद्', 'त्रिपुरातापिनी', 'त्रिपुरा-उपनिषद्' आदि सैकड़ों ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे 'श्रीविद्यार्णव'-जैसे कुछ ग्रन्थ तो बहुत ही बड़े हैं । पर आज प्राचीन सरस संस्कृत विद्याकी उपेक्षा होनेसे अब इन ग्रन्थोंका दर्शन दुर्लभ-सा हो रहा है । अस्तु ! प्राचीनकालमें भारतमें शैवागम, वैखानस-पाञ्चरात्रादि वैष्णवागम, शाक्तागम आदि अनेक उपासना-सम्प्रदाय-मार्ग-निर्देशक आगम ग्रन्थ थे । इनसे ज्ञात होता है कि इनमेंसे एक-एक शैव, शाक्त, वैष्णवादिकोंके भी कई अवान्तर भेद रहे । यथा---'समय', 'मिश्र' एवं 'कौल' भेदसे शाक्त लोग तीन प्रकारके थे । कौलमार्गमें[3] ऐहिक सिद्धियोंके लिये वीराचार, वामाचार (black magic) का निन्द्य प्रयोग भी होता था । इसके निर्देशक ६४ निबन्ध-ग्रन्थ रहे हैं ।[4]

दूसरा समुदाय 'मिश्र मार्ग' कहा जाता था । इसमें क्रिया एवं उपासना दोनों ही सम्मिलित थीं । इसके 'चन्द्रकला', 'ज्योत्स्नावती', 'कलानिधि', 'दौर्वासस', 'कुलार्णव' आदि आठ आगम ग्रन्थ हैं । तीसरा मार्ग है 'समय मार्ग' । इसका एकमात्र मोक्ष ही लक्ष्य है । यह अद्वैत वेदान्तसम्मत शाक्तमार्ग है । 'समय' शब्दकी यद्यपि अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं, पर 'स मया सह (वर्तते)—वह परमात्मा मेरे साथ ही है', यही अर्थ यहाँ मुख्य माना गया है । इसमें परमात्माको ही स्त्री ललिताका रूप दिया गया है ।[5] केनोपनिषद् ३ । १२ की उमा हैमवती या उपनिषदोंकी पराविद्या[6] ही यह 'ललिता' है । इस 'समय-आगम'के ५ प्रमुख

३. इस मार्गकी आलोचनासे पुराण, धर्मशास्त्र, वैष्णव आगम आदि भरे हुए हैं । गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा है—

तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं । बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ॥
(श्रीराम० २ । १६७ । ४)

तथा चौदह निकृष्ट मृतप्राय प्राणियोंकी गणनामें भी 'कौल'को ही सर्वप्रथम रक्खा—'कौल कामबस कृपन बिमूढ़ा ।' आदि,
(श्रीराम० ६ । ३० । १)

तथा 'शैवं पाशुपतं कौलमूर्तं भैरवशासनम्' (गणेश० १२६) इत्यादि एवं महाभारत, शान्तिपर्व ६३ । १२ की नीलकण्ठी टीका, देवीभागवत ७ । ३९ । २५-२७, कूर्मपुराण, पू० १३७-८, १८४ (एसियाटिक सोसा० संस्क०), विष्णुधर्मोत्तर, १३४ आदि द्रष्टव्य ।

४. द्रष्टव्य आनन्दलहरी, श्लोक ३० का डिण्डिमभाष्य ।

5. (A) "This is the last and the most important of the Śākta Śāstras. It has no less an end than Mokṣa in view. x x The word 'Samaya' means 'He is with me.' x x x This is the one authenticated and recognized form of worshipping the Supreme Essence or Parabrahma as a Female entity."

(P. 3-5, "Introduction to the 'Saundarya-Lahari—Wave of Beauty", Ganesh and Co. Madras)

(B) "It is called the 'Samaya Marga', as opposed to the 'Kaula Marga' which is contrary to the Vedic teaching and which, in too many cases led to the most execrable ritual subversive of all morality". Vide 41, Lakṣmīdharā. (Preface to ibid., p. II)

६. (क)

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥
(देवीमाहात्म्य ४ । ५)

यह श्लोक बहुत सुन्दर है । इसमें देवीको 'पराविद्या' तथा साधक मुनियोंको 'निरस्तसमस्तदोष', 'मोक्षैकलक्ष्य' बतलाया है । इसके वक्ता मार्कण्डेय-सुमेधा-व्यासादि सभी वासिष्ठानुगामी अद्वैत-मार्गी ही हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेद हैं, जिनके प्रवर्तकोंमें सनकादि, वसिष्ठ एवं शुकदेव-जैसे महात्मा हैं। कुछने यौगिक कुण्डलिनी शक्तिको ही शक्ति ललिता या सौन्दर्यलहरीका वर्ण्य तत्त्व माना है। पर उस कुण्डलिनीका भी तात्पर्य समाधिद्वारा शिवात्मैक्य-साधनामें ही है।

अब ताटङ्क क्या है, यह देखा जाय।

सामान्य दृष्टिसे ताटङ्क (तटङ्की, तरकी या तरका नामक) स्त्रियोंका सौभाग्यसूचक कर्णभूषण है। कहीं-कहीं इसे पतिद्वारा ही धारण कराये जानेकी प्रथा है। कर्णाटक देशमें यह बहुत प्रसिद्ध है। गुर्जर आदि देशोंमें आरकूट तथा सौवर्ण कङ्कणादिके रूपमें यह धारण किया जाता है। सौभाग्य-भूषणके रूपमें गोस्वामीजीने भी मानसमें इसका उल्लेख किया है—

मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका।
छत्र मुकुट ताटंक सब हते एकहीं बान। आदि
(रा० च० मा० लङ्का० १२। ३; १३)

पर खेद है, अबतकके मानसके किसी भी टीकाकारने इस रहस्यपर तनिक भी प्रकाश नहीं डाला। वास्तवमें मन्दोदरीके ताटङ्कापहरणसे उसके भावी वैधव्य तथा रावणके छत्र-मुकुट आदिके अपाकरणादिसे राज्य एवं शरीरके नाशकी ही सूचना दी गयी थी। इसके आगे तेरहवें दोहेकी छठी पङ्क्तिमें इस आभूषणको 'श्रवणपूर' या 'कर्णपूर' अथवा (कर्णफूल) आभूषणके रूपमें स्मरण किया गया है—

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥
(वही, ६। १३। ३)

कहते हैं, कवि कर्णपूर गोस्वामीका नाम भी, 'श्रवसः कुवलयम्' आदि श्लोककी रचनाके कारण ही पड़ा था। इससे ये तीनों आभूषण एक ही हैं। इसका स्रोत यद्यपि भट्टिकाव्य, प्रसन्नराघव एवं अध्यात्मरामायण आदिमें भी है, तथापि मानसकारकी निरूपण-शैली अति दिव्य एवं चमत्कारपूर्ण है। प्रसन्नराघवकार श्रीजयदेवने पता नहीं, किस आधारपर रामका एक नाम भी 'ताटङ्की' रख दिया है। यथा—

ताटङ्किना झटिति ताडितताटकेन
रामेण पङ्करमणीयविलोचनेन॥
(३। १)

इसकी टीकाओंमें कोई विशेष प्रकाश नहीं है। कुछ लोग रामके कुण्डलको ही 'ताटङ्क' मानते हैं। पर 'ताडितताटक' एवं 'पातित-मन्दोदरी-ताटङ्क' आदि प्रयोग विशेष उल्लेख-नीय हैं, जिनका भाव तुलसीके मानसपर अङ्कित दीखता है। पर इस प्रसङ्गान्तरका विस्तार न कर ललिताम्बाके ताटङ्कपर ही यदि ध्यान दिया जाय तो यह पति (शिव) द्वारा पार्वती (ललिता)—को प्रदत्त श्रीरामनाम ही कर्णभूषण है, जिसे—राम-पूर्वोत्तरतापिनी-रहस्य एवं मानसादिके अनुसार—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
(१। १०७। ४)

अहं भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
(अध्या० रामा०)

---वे निरन्तर जपते हैं, अथवा फिर वेदान्तियोंकी दृष्टिसे ब्रह्मविद्या ही ललिता है। सदा अखण्ड अजर अमर ब्रह्म ही शिव है और ब्रह्मज्ञान ही वह सौभाग्यभूषण ताटङ्क है, जिससे शिवकी नित्य शिवता सिद्ध होती है।

(पुनः कभी विस्तारसे इसपर विचार किया जायगा)

(ख) "The text has the word 'Haimavati'. Śrī Śankara gives two interpretations to it.—(1) decked with gold ornaments; and (2) the daughter of Himalaya, as traditionally known. Again, oriental scholars interpret Umā to mean 'Brahma-Vidyā' or knowledge, and render Haimavati as that 'Umā' or knowledge which was originally got on the top of the Himalaya, where the sages lived.
(Page 5, "Introduction to the Wave of Beauty", Ibid.)

7. (A) Ibid., p. 6—10, 'The Serpent Power' and 'Śakti and Śāktas' etc.)

(B) वहीं इस ग्रन्थ (सौन्दर्यलहरी) को गौडपादाचार्यके 'सुभगोदय' ग्रन्थपर आधृत माना गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामको सम्बोधित

(रचयिता—'स्वर्णकिरण')

जीवन-मूल्य बदलता आता, यह कैसा भीषण तूफान,
कुण्ठा, घुटन और पीड़न है, कबतक होगा स्वर्ण विहान !
भौतिकताके घटाटोपमें दीख न पाती कोई राह,
आपाधापी, भागदौड़में तनिक न पूरी होती चाह !
'मारो, काटो !' कौन बोलता, आँखें वहाँ दिखाता कौन,
चिल्लाती बुढ़िया बेचारी—'दौड़ो, आओ, रहो न मौन।'
बेटीको ये ले जाते हैं कौन आततायी जल्लाद;
माता-पिता सिसकते चुप-चुप, ये मनुष्य हैं या फौलाद !
हृदय हृदय होता है या यह होता है, बस, केवल काठ,
करुणा, माया, दया, क्षमाका केवल झूठा होता ठाठ !
खुले हुए हैं मतलबके ये कैसे-कैसे हैं बाजार !
घात लगाये बैठे हैं ये क्या—कुछ करनेको तैयार !
स्वार्थलिप्त हैं ये राक्षस या दैत्य भयंकर, प्रेत महान,
स्वयं समझते क्या अपनेको क्या ये हैं धरतीकी शान !
धर्म सिसकता है धरतीपर या कि कहीं दीखता न धर्म,
छिदते रहते हैं सबके ही कुलिशवचनसे निशिदिन मर्म।
मानवीय गुण कहाँ दीखते हैं ये जल्लादी व्यवहार,
हिंसा नर्तित सभी जगह है, भाग गया धरतीसे प्यार।
कर्म दयासे शून्य कर रहा वहाँ कौन रह-रह कल्लोल !
चिन्ता-चिता जलाती रहती मुखसे नहीं निकलते बोल।
वहाँ कौन गुमराह कर रहा चिकनी-चुपड़ी कहकर बात,
दिनका तेज प्रकाश कहाँ है, क्या है केवल काली रात !
तृप्ति-फूल दीखता कहाँ है मात्र घृणा, उबकाई, ऊब,
आशा, साहस आदि छोड़ क्या सभी आदमी जाएँ डूब !
आग जल रही धू-धू करके लपटोंसे सब हैं बेचैन,
बिरनोका खोता उकसाता छिपकर कौन मात्र दे सैन !
नींद नहीं आ पाती थोड़ी, यह कैसा छाया है पाप !
कुछ भी पता नहीं चलता है सहना वाको कितना ताप !
लोग सभी हैं खून चाहते या उनकी है कोई माँग,
उलट गया सबका दिमाग है पड़ी कूपमें है क्या भाँग !
ये हैं अपने सगे, स्वजन या ये हैं शत्रुमात्र दुर्दान्त,
कुटिल द्वेष-ईर्ष्यासे है क्या दग्ध सभीका अन्तः प्रान्त !
द्वन्द्व-ग्रस्त हैं नर-नारी सब, क्यों ये तनिक न रहते शान्त,
जहर उगलते वे हैं क्यों, क्यों उनका मानस कभी न ध्वान्त !
धर्म-नीति-अध्यात्म-प्रेमसे पूर्ण न क्यों शीतल व्यवहार,
कौन बताये साफ-साफ आ, उलटी क्यों सरिताकी धार !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरानी पीढ़ी बनाम नयी पीढ़ी

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

पुरानी पीढ़ी आजके सभ्य माने जानेवाले समाजमें उपेक्षित, बल्कि तिरस्कृत है। उसे दकियानूसी, परम्पराओंका दास, पश्चाद्गामी और झूठे विश्वासोंसे चिपका हुआ कहा जाता है। समाजमें, राजनीतिमें, अर्थ-विद्यामें, साहित्यमें—सर्वत्र सत्ता उसके हाथसे जा रही है या छीनी जा रही है।

यों तो पुरानी पीढ़ी मिटनेके लिये होती ही है, परंतु मिटकर भी वह कुछ छोड़ जाती है। जो वह छोड़ जाती है, वह नवीनके लिये ही होता है। उसीकी गोदमें नवीन पलता है, बढ़ता है और परिपुष्ट होता है। कठिनाइयों और काँटोंके बीच जीते हुए, वह अपना प्रतिक्षण नवीनको देती है और अपना संचित अनुभव, अपना वैभव, अपनी अर्जित पुण्य-राशि नवीनको दे एक दिन संसारसे विदा हो जाती है। उसने अतीतसे जो पाया था और वर्तमानमें जो अर्जित किया था, सब भविष्यके प्रति समर्पित कर देती है। इस तरह अतीत, वर्तमान और भविष्यका एक अखण्ड कालचक्र और उसका सातत्य बना रहता है।

इसीलिये भारतीय समाज-जीवनने देव-ऋणके पश्चात् मातृ-ऋण और पितृ-ऋणको विशेष महत्त्व दिया था। नवीन संततिपर माता-पिताके अशेष उपकार थे, जिसे वह नम्रतापूर्वक स्वीकार करती थी। वह यह ऋण उनको आदर देकर, उनके प्रति कृतज्ञ होकर, तन-मनसे उनकी सेवा-सहायता करके चुकानेकी चेष्टा करती थी। इसीलिये हमारे गृह स्वर्ग थे—जो माताकी आशीर्वाद-वर्षा, पिताके पथ-दर्शन, संततिकी कर्मचेष्टा और धर्मभावना तथा गृहिणीके नित्य स्नेह-दानसे गौरवान्वित थे; जहाँ मातृत्वका अक्षय आत्म-दान, पत्नीत्वका अशेष सौरभ कण-कणमें मुखरित था। पहले ऐसे गृह सामान्य थे, आज विरल हैं।

हम भी तो कभी नवीन थे। याद है, बचपनमें प्रातः आँख खुलते ही भगवत्स्मरण करते और फिर उठकर माता-पिता, बड़े-बूढ़ोंके चरण छू, हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करते थे। बड़े होनेपर भी यही क्रम रहा और गृहमें जो गुरुजन होते, उनका आशीर्वाद प्राप्तकर उमंगोंसे भर जाते थे। आज भी ऐसे गृह हैं, ऐसे परिवार और संस्थान हैं, जिनमें यह परम्परा चली आ रही है; परंतु दिन-दिन उनकी संख्या घटती जाती है। पहले गृह जीवनमय था; वह हँसता-बोलता, ऊर्जासे भरा, समाजके प्रति अपनेको निवेदित करनेके लिये तत्पर, सामूहिक उत्तरदायित्वोंके प्रति सजग था और आज जड, श्मशानवत्, पग-पगपर खीझ और कुण्ठाओंसे भरा, निराशाओंसे प्रताड़ित, कराह और आहके धुएँमें विजड़ित है—जहाँ हर एक अपने लिये जीता है। और अपने लिये जीता है, इसीलिये जी भी नहीं पाता।

कल महादेवसे भेंट हो गयी। महादेव एक फल-विक्रेता है। अब बूढ़ा हो गया है। एक युगसे मैं उसे जानता हूँ। धर्म-भावनासे भरा, ईमानदार, शिष्टताकी मूर्ति। मेरे प्रति न जाने क्यों उसका बहुत प्रेम है। कई दिनों बाद मिला था। बीमार था। मेरे हाल-चाल पूछनेपर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। सहानुभूतिकी ऊष्मासे हृदयकी हिमानी गल गयी। फिर तो बातें चल पड़ीं। कहने लगा, "बड़ा बच्चा पाँच सालका हुआ कि बच्चेकी माँ मर गयी। उस वज्रपातमें भी बच्चोंका मुँह देखकर जीता रहा। तीन बच्चे थे। दूसरी शादी नहीं की। १२ बजे रातको दूकान बंदकर घर जाता, तब खाना बनाता। बच्चोंको खिलाता-सुलाता। सुबह तड़के घरके सब काम-काज करके और बच्चोंके खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दूकान आता और दिनभर दौड़ता-फिरता। इस तरह बड़े कष्टोंसे इनको पाला है। अब सब बड़े हो गये हैं, हाथ-पाँवसे दुरुस्त। कभी कमाते-खाते हैं, कभी बेकार रहते हैं। मेरे घरमें ही रहते हैं, पर बीमारीमें एकको छोड़, जो कुछ ख्याल रखता है, कोई मुँहसे हाल-चाल भी नहीं पूछता कि कैसी तबीयत है, कुछ मुँहमें गया है या नहीं। पड़ा-पड़ा उन्हें आशीर्वाद देता हूँ और भगवान्से प्रार्थना करता रहता हूँ कि 'प्रभो! मुझे उठा लो।' दिलमें जो घाव लगा है, उसे उन्हींकी लीला समझ भोग रहा हूँ; पर दुःख तो होता ही है।"

महादेव बहुत-सी बातें करता रहा। बातें करता जाता और रोता जाता था; रोना जब बंद हो गया, तब भी उसके शब्द लड़खड़ाते थे और वाणी मानो सिसक-सिसक उठती थी। उसे बहुत ढाढस देकर विदा हुआ।

लौटते हुए मैं ऐसी ही स्मृतियोंमें खो गया। बहुत-सी गुजरी बातें और घटनाएँ आँखोंके आगे फिर गयीं। मेरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक अभिन्न सुहृद् हैं। उच्च कोटिके विद्वान्, अत्यन्त प्रेमिल और उदार पुरुष; धर्मभावनासे प्रेरित और कर्तव्य-निष्ठ। उनका सारा जीवन ही कर्तव्यनिष्ठामें बीता है। महादेवकी भाँति उन्होंने भी अपनी संततिका पालन बड़े प्रेमसे, निरन्तर कष्टोंके बीच किया। पत्नीके निरन्तर रोगिणी रहनेके कारण बड़े लड़केको तो उन्होंने माँकी तरह पाला। उसे पढ़ाया-लिखाया, योग्य बनाया; उसे अपना सारा व्यवसाय सौंप दिया। परंतु यही लड़का ब्याह होनेके बाद ऐसा बदल गया कि जो देखता है, आश्चर्य करता है। उन्हींके मकानमें अलग रहता है, उन्हींके दिये हुए व्यवसायकी कमाई खाता है; परंतु माता-पिताके प्रति ऐसा व्यवहार करता है, मानो वे शत्रु हों।

दो साल हुए, इन्हीं महोदयकी एकमात्र कन्याका विवाह हुआ। नाते-रिश्तेमें दूर-दूरके लोग आये; नगर और मुहल्लेके लोगोंकी भीड़ लगी रहती। पराये लोग सेवा करते फिरते थे। परंतु उसका यह बड़ा भाई और उसकी अहंकारके नशेमें डूबी पत्नी, मतलब लड़कीकी भाभी, उसी मकानके एक भागमें रहते हुए भी, किसी अवसरपर दिखायी नहीं पड़े; अपने-पराये सभीने कन्याको कुछ-न-कुछ उपहार दिया, किंतु उन लोगोंने एक फूटी कौड़ी न दी, न कन्याको आशीर्वाद देने आये; छोटे-छोटे बच्चोंको भी इस समारोहमें शामिल होनेको मना कर दिया। माँके कलेजेमें शूल चुभ गया; पिता कराहकर रह गये। किंतु सबसे अधिक व्यथातुर तो वह बालिका हुई, जो सदाके लिये अपने चिर-परिचित गृहसे दूर चली जा रही थी। उसकी थरथराती वाणीसे, न चाहते हुए भी, शब्द निकले—'दादा माता-पितासे नहीं, मुझसे न जाने किस जनमका बदला ले रहे हैं!' जिसने सुना, उसीकी आँखें भर आयीं।

हमारे यहाँ कभी-कभी एक बुढ़िया आ जाती है—सिर-पर साफ मिट्टीकी एक डलिया धरे—वृद्धावस्थाकी निर्बलतासे लड़खड़ाती-सी। दम फूल-फूल जाता है; चला नहीं जाता। लगता है—अब गिरी, तब गिरी। हमारे यहाँ कुछ ज्यादा पैसे उसे मिल जाते हैं। एक दिन मैंने पूछा—'जब चला नहीं जाता, तब क्यों आती है?' बोली—'भैया! न आनेपर पेट पापी कैसे भरेगा?' मेरे मुँहसे निकल गया—'क्या कोई बेटा नहीं है?' इतना सुनते ही उसके पाँव थरथराये और वह धमसे धरतीपर बैठ गयी। कण्ठावरोध हो गया—कुछ देरतक तो बोल ही न सकी। फिर कहा—'भैया! बेटे तो एक नहीं, सात हैं। पर सब अपने-अपनेको देखते हैं, बाल-बच्चे लेकर अलग हैं, कमाते-खाते हैं; मुझे अलग कर दिया तो भगवान्‌का नाम लेती और यही मिट्टी बेचती हूँ, दो पैसे मिल जाते हैं। कोठरीके पास ही एक स्त्री हमारे लिये दो टिक्कड़ सेंक देती है।'

हमारे घरसे लगभग चार फर्लांगपर रहते हैं—राधेकृष्ण। तेज-तर्रार आदमी हैं। कई दुकानें हैं। अच्छी चलती है। इनके पिताने विमाताकी शह पाकर इनपर बहुत अन्याय किये। परंतु बूढ़े पिताकी वे बराबर सेवा करते जाते हैं। उनकी जीविकाका स्वतन्त्र प्रबन्ध कर दिया है। पिता कुछ अनुचित भी कह देते हैं तो बोलते नहीं। शीलवान्, समझदार आदमी हैं।

इनका एक लड़का है, जिसको पढ़ाने-लिखानेकी उन्होंने बड़ी चेष्टा की; किंतु मैट्रिकतक भी चल न पाया; फिर व्यवसायमें लगाना चाहा, अलग दूकान कर दी; पर वहाँ भी मन न लगा। पैसा फूँकता, यार-दोस्त जुड़ते, कहकहे लगते, इधर-उधर घूमना-फिरना होता; पर न संस्कार बन पाते थे, न जीविकोपार्जन ही होता। एक दिन डाँटने-फटकारनेपर पितापर लकड़ी तानकर दौड़ा। पिता चाहते तो उनमें इतना बल था कि उसका भुर्ता बनाकर रख देते। पर उन्हें कभी विश्वास न था कि वह इस सीमातक जा सकता है। इस घटनासे वह सकतेमें आ गये। क्रोध नहीं हुआ, पर गहरे दुःखका ऐसा झटका लगा कि वहीं बैठ गये। तबसे वे उससे बोलते ही नहीं।

हमारे ही निकट एक लड़केने—उत्तेजनामें, जब पिता चुपचाप भोजनपर बैठे थे, पीछेसे आकर उनका गला दबोच दिया। दूसरे लोग दौड़ पड़े और उसे पकड़ लिया। पिता कुछ नहीं बोले; बिना खाये उठ गये और उनकी आँखोंसे दो बूँद आँसू ढुलक पड़े—आँसू, जो उनके चुप रह जानेपर भी वेदनाकी गहराइयोंके मन्थनसे उत्पन्न हुए थे।

ऐसे उदाहरण और भी हैं। ये बतलाते हैं कि पिछले ५० वर्षोंमें हम कहाँ-से-कहाँ आ गये हैं। हमने बात मातृ-पितृ-ऋणसे शुरू की थी। एक समय अवतार-पुरुष तथा वेदान्तके सूर्य आदि शंकराचार्य-जैसे संन्यासीतकको कहना पड़ा था कि 'मेरी सारी साधना और तपस्या माँकी तपस्याके सामने कुछ नहीं है।' किंतु हम उतनी ऊँची बातोंको छोड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दें, तो भी शिष्टाचार सभ्य जीवनकी प्रथम कसौटी है। जानता हूँ कि नयी पीढ़ीका भी एक पक्ष है और उसकी वकालत करनेवाले बहुमतमें हैं। मैं यह भी मान लेता हूँ कि माता-पितासे तुम्हारा मत भिन्न हो सकता है। यह भी स्वीकार कर लेता हूँ कि तुम अपने पथपर चलनेको स्वतन्त्र हो— प्रत्येक मनुष्य है; किंतु क्या दुर्व्यवहार, असभ्यता और अशिष्टता स्वतन्त्र मत और स्वतन्त्र जीवन-पद्धतिके लिये अनिवार्य हैं? क्या मतभेद रखते हुए भी हम गुरुजनोंको आदर और सम्मान नहीं दे सकते? क्या आक्रोश, उत्तेजना, उद्दण्डता और किये हुए उपकारोंकी अस्वीकृति किसी नवीनताके गौरव-चिह्न हैं?

यह जो नयी पीढ़ीमें उद्दण्डता बढ़ रही है, यह निर्माण नहीं करती, विस्फोट और विखण्डनमात्र करती है। घरमें, समाजमें, राजनीतिमें, साहित्यमें, विद्योपार्जनके क्षेत्रोंमें सर्वत्र उसका भयावह रूप हम देख सकते हैं। यह एक राष्ट्रीय क्षय है। यह आत्महत्या है। कितनी शक्ति, जो जीवनके निर्माणमें लगती, संस्कृतिको जन्म देती और देश तथा मानवताके हितमें लगती, निरर्थक नष्ट हो रही है।

मेरा तात्पर्य यह नहीं कि नयी पीढ़ीमें जो आवेग है, जो विद्रोह-भावना है, जो प्रश्न-चिह्न खड़ा करनेकी वृत्ति है, जो शक्तिका उन्मेष है, वह निरर्थक है, या यह कि वह उसे छोड़ दे। मेरा मतलब इतना ही है कि यह जो वर्तमान है, इसके समुचित उपयोग और विकासमें पुरानी पीढ़ीकी भी कुछ देन है। उस देनको स्वीकार करके नयी पीढ़ी अपनी ही शक्ति बढ़ायेगी। उसके प्रति आदर और सम्मान प्रकारान्तरसे अपना ही आदर और सम्मान है। शिष्टता प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग, समाज और कालका भूषण है। उसका तिरस्कार मानवताकी ही अस्वीकृति है।

अनुशासन

यह सारी सृष्टि एक दैवी अनुशासनपर चलती है। जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र, आकाश, समुद्र, पर्वत और हमारे चतुर्दिक् दृश्यमान नक्षत्रगण एक अनुशासनपर चलकर अपनी-अपनी मर्यादापर कायम रहते हैं, वैसे ही मनुष्यको भी अपने चतुर्दिक्के सभी कामोंमें अनुशासनका पालन अचूक और नियमितरूपसे करना चाहिये।

सारे अनुशासनोंकी जड़ व्यक्तिगत अनुशासन है। जबतक कोई भी व्यक्ति अपने-आप अनुशासन और नियम-पालनमें बँध नहीं जाता, तबतक उसका दूसरेसे वैसा करानेकी आशा करना व्यर्थ है।

अनुशासन शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके होते हैं और किसी भी व्यक्तिके प्रशिक्षणके लिये ये दोनों ही जरूरी हैं।

अनुशासनमें रखनेका प्रशिक्षण बचपनमें और घरसे ही शुरू होना चाहिये। अनुशासनहीन बालक आसानीसे बिगड़ जाते हैं।

अनुशासनके बिना न तो परिवार चल सकता है न संस्था या राष्ट्र। वास्तवमें अनुशासन ही संगठनकी कुंजी और प्रगतिकी सीढ़ी है।

अनुशासन केवल फौजोंके लिये नहीं, जीवनके हर क्षेत्रके लिये है।

अनुशासनका पालन तभी सम्भव है, जब मनुष्यको उस काममें अनुराग हो, जिसमें वह लगा हुआ है। इसके बिना तो अनुशासन अनुकरणमात्र होगा।

किसी भी राष्ट्रका परिचय उसके अनुशासनबद्ध नागरिकोंसे मिल जाता है। बाहरी दुनियाकी भाँति अपने मन और शरीरको भी अनुशासनमें रखना चाहिये।

—महात्मा गांधी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सार्थक गीता-अध्ययन

लगभग ८० वर्ष पूर्वकी बात है—बीकानेर राज्यके चूरू-रतनगढ़ नगरोंमें नाथ-सम्प्रदायके त्यागी, वैरागी एवं तपोनिष्ठ संत रहते थे। शहरके बाहर उनकी कुटियाँ थीं। शहरके श्रद्धालु स्त्री-पुरुष प्रायः उनके दर्शनके लिये जाया करते थे। रतनगढ़में उन दिनों प्रसिद्ध संतोंमें श्रीबखन्नाथजी महाराज थे। ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका उस समय बालक थे। श्रीसेठजीकी माताजी, परम सौभाग्यवती शिवोबाई जब अपने नैहर रतनगढ़ जातीं, तब अपनी माता एवं पुत्र श्रीजयदयालके साथ वे भी श्रीबखन्नाथजी महाराजके दर्शन करने जाया करती थीं। प्रत्येक घटना, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार, प्रत्येक क्रियाका प्रभाव हमारे हृदयपर होता है, चाहे हम उसे अनुभव करें या नहीं। श्रीबखन्नाथजीके दर्शनोंका भी सुप्त प्रभाव बालक श्रीजयदयालके अन्तःकरणपर पड़ा। श्रीबखन्नाथजी साधन पूछनेवालोंको श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठका उपदेश करते थे। श्रीसेठजीने कभी उनसे पूछा नहीं और उन्होंने भी कभी अपनी ओरसे कुछ नहीं बताया; पर बालक श्रीजयदयालके मनमें स्वतः गीताके पाठ एवं अध्ययनकी बात आयी। वे गीताका पाठ अर्थसहित करने लगे। पाठ करते-करते जब वे गीताके १८वें अध्यायमें पहुँचे, तब उन्हें गीताके उपसंहार-प्रकरणमें भगवान्‌की घोषणाके ये दो श्लोक मिले—

> य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
> भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
> न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
> भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥
>
> (गीता १८। ६८-६९)

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई होगा भी नहीं।'

बस, श्रीसेठजीके हृदयमें भगवान्‌की वाणी गूँजने लगी। उन्हें अपने जीवनकी साधना मिल गयी। 'जो परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा'—भगवान्‌की इस आज्ञाके पालनके लिये यह आवश्यक हो गया कि पहले स्वयं उस शास्त्रके मर्मको हृदयंगम किया जाय। श्रीसेठजीने गीताके अर्थ और भावोंको समझनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। संस्कृतकी टीकाओंको वे उलटने लगे। एक दिन वे गीताकी मधुसूदनी टीका लेकर श्रीबखन्नाथजी महाराजके पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की—'महाराजजी! मुझे यह टीका पढ़ा दीजिये।' नाथजीके मनमें आया—'जिस टीकाको लगानेमें बड़े-बड़े पण्डितोंकी बुद्धि चकराती है, उस टीकाको यह बालक क्या समझेगा?' उन्होंने बालकको टाल दिया। पर सेठजी साधारण बालक तो थे नहीं, वे तो पूर्वजन्मके विशेष संस्कारी जीव थे और भगवान्‌की विशेष इच्छासे जीवोंके कल्याणके लिये पधारे थे। साथ ही उनमें कार्यको पूरा करनेकी अद्भुत लगन थी। सच्ची लगन होती है तो भगवान् भी सहायता करते हैं। कुछ दिनों बाद श्रीसेठजी चूरू आये। वहाँ उन्होंने संस्कृतके अच्छे ज्ञाता पं० श्रीकन्हैयालालजी ढंढके सहयोगसे मधुसूदनी टीकाके साथ गीता पढ़ना आरम्भ किया। थोड़े समयमें ही उन्होंने दो अध्याय पूरे कर लिये। इसी बीच अपनी माताके साथ श्रीसेठजीका पुनः रतनगढ़ जाना हुआ। वे श्रीबखन्नाथजी महाराजसे मिले तथा अपना गीताका अभ्यास भी उन्हें सुनाया। नाथजी श्रीसेठजीका गीताभ्यास देखकर चकित रह गये। उन्होंने समझ लिया कि निश्चय ही यह विशेष संस्कारी बालक है। उन्होंने हृदयसे श्रीसेठजीके मङ्गल भविष्यकी शुभकामना की। महात्माजीका आशीर्वाद मिलनेपर उनका उत्साह और बढ़ा। वे संस्कृत टीकाओंके अध्ययनमें और भी तत्परतासे लग गये। एक-एक करके उन्होंने संस्कृतकी प्रायः सभी टीकाएँ पढ़ लीं। परंतु भक्तोंको गीताका संदेश कहनेके सम्बन्धमें जो भगवान्‌का आदेश है, वह पूरा नहीं हो पाया। कई बार साहस बटोरा गीताके भावोंपर कुछ कहनेका, पर सफल न हो सके। अन्तमें अध्ययनके आधारपर गीताके अर्थ एवं भावोंकी चर्चा अपने मित्रोंमें करने लगे। मित्रोंको यह चर्चा बड़ी रुचिकर हुई तथा इससे उन्हें लाभ भी पहुँचा। अतएव मित्रोंका आग्रह गीताचर्चाके प्रति बढ़ने लगा। कहने-सुननेसे भावोंका मनन होने लगा। नये-नये भाव हृदयमें स्फुरित होने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण गीताका अर्थ लिखा और वह प्रकाशित हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीछे तो उन्होंने गीताके भावोंको स्पष्ट करनेवाली एक विलक्षण विशद टीका लिखी, जो गीतातत्त्वविवेचनीके नामसे विख्यात है और बहुत अधिक संख्यामें गीताप्रेससे प्रकाशित हो चुकी है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना जीवन ही भगवान्‌की वाणीको भक्तोंके प्रति कहनेमें लगा दिया। गीताप्रेसकी स्थापना एवं 'कल्याण'का आरम्भ इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हुआ। दोनोंका कार्यक्षेत्र सर्वविदित है।

गीता न जाने कितने लोग पढ़ते हैं, पर जीवनमें उसका तनिक भी प्रभाव नहीं होता। श्रीसेठजी-जैसे महापुरुषने गीताके दो श्लोकोंके पढ़नेमात्रसे अपना सम्पूर्ण जीवन गीता-ज्ञानकी प्राप्ति एवं उसके मुक्तहस्त वितरणमें लगा दिया और धार्मिक जगत्‌में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उनके सत्प्रयत्नसे करोड़ों व्यक्ति भगवान्‌के अभिमुख हुए हैं और सुदीर्घकालतक होते रहेंगे। यह है महापुरुषका सार्थक गीता-अध्ययन।

महाप्रयाणके कुछ दिन पूर्व अपने जीवनकी इस महान् घटनाका उल्लेख करते हुए उन्होंने अपने एक लेखमें सबसे प्रार्थना की थी—'जो मनुष्य उपर्युक्त इन दोनों श्लोकोंके अर्थ और भावको भलीभाँति समझ जाता है, उसका तो सारा जीवन गीता-प्रचारमें ही व्यतीत होना चाहिये। वर्तमान समयमें (गीताप्रेस-कल्याण आदिके द्वारा तथा मौखिक उपदेशोंके द्वारा) जो कुछ भी गीता-प्रचार हमारे देखने-सुननेमें आता है, उसका भी प्रधान कारण इन दो श्लोकोंका अर्थ और भावको जाननेका प्रभाव ही है।'

सचमुच श्रीसेठजीका जीवन गीतामय हो गया था। उनके शरीरका एक-एक कण और जीवनका एक-एक श्वास गीताज्ञानके वितरणमें व्यतीत हुआ। अपने विचारद्वारा, वाणीद्वारा, लेखनीद्वारा एवं जीवनद्वारा वे निरन्तर गीतामृतका प्रचुरतासे दान करते रहे। श्रीसेठजी साक्षात् 'गीता-मूर्ति' थे—गीताज्ञानके साकार विग्रह थे।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

(२)

अनोखी उदारता

'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'—उक्तिके अनुसार महापुरुषोंमें जन्मसे ही कुछ विलक्षणताके दर्शन होते हैं। श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके स्वभावकी मृदुलता, साधुता, सौम्यता, सात्त्विकता, उदारता प्रसिद्ध हैं; जो भी उनके सम्पर्कमें आया है, वह उनके इन गुणोंपर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा। उनमें ये गुण बिल्कुल सहज थे, स्वाभाविक थे—जन्मजात थे। छोटेपनसे ही उनका स्वभाव अत्यन्त उदार था; वे अपनी हानि करके भी दूसरोंका भला करनेके लिये प्रयत्नशील रहते थे। वास्तवमें उनकी दृष्टिमें 'पर' कोई था ही नहीं। जब सभी अपने हैं, तब सबका सुख-दुःख अपना है, सबकी मान-प्रतिष्ठा अपनी है।

सन् १९१८ से १९२७ के बीच श्रीभाईजी बम्बईमें व्यापार करते थे। शेयर बाजारमें साझेदारीका काम था। श्रीभाईजी उस कामको देखते थे। एक काम और था। उसमें देहातोंसे रूई मँगवाकर विदेशोंमें भेजी जाती थी। उसका काम फर्मके दूसरे हिस्सेदार श्रीचिरंजीलालजी जाजोदिया देखते थे। महाराष्ट्रके नागपुर, वर्धा आदि जिलोंसे रूई आती थी। श्रीजाजोदियाजी बड़े अच्छे हिसाब-किताबी थे। वे दूसरेका पैसा लेते नहीं थे और अपना पैसा कभी छोड़ते नहीं थे। इस फर्ममें रूईके लेन-देनका काम दूसरे लोगोंका भी करवाया जाता था। जोधपुरकी ओरके एक सज्जन रूईके लेन-देनका बहुत काम करते थे। उनका काम श्रीभाईजीकी फर्मकी मार्फत होता था। वे सज्जन बड़े भले व्यक्ति थे। उनके हिसाब-किताबमें कहीं कोई गड़बड़ नहीं होती थी।

विधिका विधान विचित्र है। प्रारब्धके विपरीत होनेपर वही मनुष्य जो अनायास बराबर ऊपर चढ़ता चलता है, प्रयत्न करनेपर भी असफल हो जाता है। जोधपुरकी ओरके सज्जनको भी भाग्यकी विपरीतताने आ घेरा। एक बार उन सज्जनने श्रीभाईजीकी फर्मका काम किया और उसमें ६०-७० हजार रुपये लग गये। वे सज्जन रुपये नहीं दे सके। श्रीभाईजीको मालूम था कि उनके पास रुपये नहीं हैं और घाटा अधिक है, इससे वे रुपये नहीं दे पा रहे हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे तकाजा करना तो दूर रहा, उल्टे जब कभी दोनों घूमते-फिरते कहीं आमने-सामने हो जाते तो श्रीभाईजी उन सज्जनको लज्जा एवं संकोचसे बचानेके लिये दूसरी ओर घूम जाते थे। पर श्रीजाजोदियाजीने जब देखा कि बार-बार तकाजा करनेपर भी वे सज्जन रुपये नहीं दे रहे हैं, तब उन्होंने उनपर कचहरीमें नालिश कर दी। श्रीभाईजीने जाजोदियाजीसे नालिश न करनेके लिये कहा-सुना, पर उन्होंने समझाया कि व्यापारमें इस प्रकार रुपये छोड़नेसे फर्म फेल हो जायगी। श्रीभाईजी उनका आग्रह देख चुप हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गये। बात सत्य थी ही। श्रीभाईजीकी फर्मके पक्षमें डिग्री हो गयी। डिग्रीके रुपये वसूल करनेके लिये श्रीजाजोदियाजीने सरकारसे कहकर एक दिन उन सज्जनपर कुर्की—जप्तीका आर्डर ले लिया। श्रीभाईजीको अच्छी प्रकार ज्ञात था कि उन सज्जनके पास नकद रुपये नहीं हैं; जो कुछ है, वह गहना है। यदि गहना भी चला गया, तो उन्हें खानेके लाले पड़ जायेंगे; बेचारोंके लिये बड़े संकटकी स्थिति हो जायगी। किंतु श्रीभाईजी निरुपाय थे। श्रीजाजोदियाजीके स्वभावसे वे पूर्ण परिचित थे और जानते थे कि कहनेपर भी वे रुपया छोड़ेंगे नहीं। श्रीभाईजीको दूसरा उपाय सूझा। उन्होंने उन सज्जनको फोन किया—'हमारे फर्मकी ओरसे आपके वहाँ कुर्की जा रही है; आप सावधान हो जाइये और गहना, सामान आदि जो कुछ भी इधर-उधर करना हो, कर दीजियेगा।' श्रीभाईजीका संकेत पाते ही उन सज्जनने गहना-सामान आदि अपने मित्रोंके यहाँ रखवा दिया। कुर्कीवाले गये, पर उन्हें कुछ नहीं मिला। वे खाली हाथ लौट आये। श्रीजाजोदियाजीके मनमें बड़ा विचार हुआ कि कुर्कीमें कुछ भी न मिला।

श्रीभाईजी श्रीजाजोदियाजीकी मानसिक वेदना जानते ही थे। अतएव सान्त्वना देनेके लिये उन्होंने श्रीजाजोदियाजीको वास्तविक परिस्थिति बतला दी—'बेचारेके पास नकद कुछ है नहीं, गहना है। यदि वह भी आपने ले लिया तो वे तथा उनके परिवारवाले भूखों मर जायँगे। अतएव मैंने फोनद्वारा उन्हें कुर्की आनेकी बात बता दी थी और कह दिया था कि गहना आदि घरसे हटा देना चाहिये।' श्रीजाजोदियाजी श्रीभाईजीकी बात सुनकर सन्न रह गये। श्रीभाईजीके स्वभावकी इस विचित्रतासे वे परिचित थे तथा वे श्रीभाईजीको बहुत मानते थे। श्रीभाईजीकी बात सुनकर वे बोले—'जब आपको फोन ही करना था तो मुझे पहले ही क्यों नहीं कह दिया? कुर्की भेजते ही नहीं। व्यर्थ ही उसमें कुछ रुपये और लग गये तथा परेशानी हुई।' श्रीभाईजी हँस दिये।

इस प्रकार रुपये छोड़नेकी अनेकों घटनाएँ श्रीभाईजीके व्यापारिक जीवनमें घटी थीं।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

(३)

युवा विमानचालकका आत्म-बलिदान

७ मई १९५८ की दोपहरी। दिल्लीका सफदरजंग हवाई अड्डा और उसके आस-पास एक विचित्र तरहकी खामोशी। सुनसान वातावरणको कभी कोई सिटी बस अथवा कोई स्कूटर-रिक्शा या फिर इक्का-दुक्का आदमी यदा-कदा विचलित कर जाते। पर उदासी और एकान्त जैसे जड हो गये हों। हवाई अड्डेके भीतर काम कर रहे कर्मचारी भी फ्लाइंग क्लबके हैंगर (विमान-शाला)में कलके क्षतिग्रस्त ग्लाइडर (इंजिन हीन वायुयान) की जाँच-पड़तालमें व्यस्त थे। अकस्मात् कानोंके पर्दे फाड़ देनेवाले दो धमाके हुए। लगा जैसे लोहे और कंक्रीटका बना हुआ बड़े-बड़े दरवाजों और खिड़कियोंवाला वह दैत्याकार हैंगर हिलता हुआ अभी ध्वस्त हो जायगा। अचानक इस नयी विपत्तिने आकर हवाईअड्डेकी जड खामोशीको भयानक विप्लवमें बदल दिया। हैंगरमें कुहराम मच गया। सभी बाहर भाग रहे थे। पहले तो लोगोंको लगा कि उड़ान भरते ही कोई डकोटा विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया है; पर जब उन्होंने बायीं ओरवाले हैंगरको, जिसमें दर्जनों वायुयान और लाखों रुपयोंके हवाई जहाजके स्पेयर-पार्टस् (अतिरिक्त पुर्जे) थे, पेट्रोलके काले विषाक्त धुँएके बीच घिरा हुआ देखा, तब सबसे पहले उन्हें दायीं ओर केवल सौ गज दूरीपर खड़े हुए आग्जीलियरी एयरफोर्स (सहायक वायुसेना) के कई पेट्रोल भरे हवाई जहाजोंकी सुरक्षाकी चिन्ता हुई। उस विमान-दस्तेके अधिकारी, स्क्वाड्रन-लीडर तथा विंग-कमाण्डर अपने कुछ सहायकोंके साथ उन विमानोंको सुरक्षित स्थानोंतक पहुँचानेमें प्राण-पणसे लगे हुए थे। कुछ ही क्षणोंमें बायीं ओरवाला हैंगर आगकी भयानक लाल-लाल लपटोंके रूपमें दिखायी पड़ने लगा।

पूरा कार्यालय खाली करा दिया गया। अचानक लोगोंकी दृष्टि ऊपर आसमानकी ओर गयी। आसमान जैसे लाल-लाल लपटों और धुएँके अतिरिक्त कुछ और नहीं था। यह काला दृश्य दिल्ली आनेवाले कुछ जहाजोंके विमानचालकके अनुसार पचास मील दूरसे भी दिखायी पड़ रहा था। लोगोंने देखा—पैराशूट (वायुयानसे उतरनेके छाते) का एक गुम्बद नीचे उतर रहा था। यह दृश्य उनके लिये कोई नया नहीं था। फिर भी स्थिति अब काफी स्पष्ट हो गयी थी। पैराशूटसे झूलते नीली और खाकी वर्दीधारीके दोनों हाथ नीचेकी ओर झूल रहे थे। ऐसा केवल एक ही दशामें हो सकता था जब कि छतरीधारी बेहोश हो, वरना छतरीकी रस्सियाँ उसके हाथोंमें होतीं। उतरते हुए अचेत व्यक्तिका सिर छातीपर झूल रहा था। मुख्य 'रन-वे' (विमानभूमि) के निकट खड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोगोंमें ३०० गजकी दूरीपर छतरीधारी गिरा । उसके निकट पहुँचनेपर लोगोंने उसकी वर्दीपर लगे बैजसे अनुमान लगाया कि वह फ्लाइट लेफ्टिनेंट (वायुसेनाका एक पदाधिकारी) था । उसे सीधे लिटाकर छतरीकी घुंडी दबाकर छतरीसे मुक्त किया गया । उसकी टाईकी गाँठ ढीली कर दी गयी । अचेत व्यक्ति मँझोले कदका सुन्दर गोरा-चिट्टा युवा विमानचालक गेरा था । उसके मुँहसे खूनकी पतली रेखा-सी बह रही थी ।

पायलट गेरा एक नेवीगेटरके साथ वैम्पायर नाइट फाइटर (रात्रि योधक विमान) पर सामान्य उड़ानपर निकला था । यह अभी कुछ ही घंटे पहलेकी बात थी । वह यमुनापरसे होकर उड़ रहा था कि अकस्मात् उसके जहाजमें आग लग गयी । गेराने तत्काल पालम कंट्रोल-टावरको इसकी सूचना दी । साथ ही उसने हवाई जहाजको पालमकी ओर मोड़ दिया । उसने आशा की थी कि वह पालम हवाई अड्डेतक पहुँच जायगा, लेकिन आगकी लपटें बढ़ती ही जा रही थीं । काकपिटके भीतर विषाक्त तीक्ष्ण धुआँ भरता जा रहा था । वह आँचमें झुलस रहा था । उसे लगा पालमतक पहुँचनेका उसका सारा प्रयत्न असफल ही रहेगा । पर जहाज अब नयी दिल्लीके ऊपर उड़ रहा था । उसका मन भयानक आशङ्कासे भर गया । उसने एक बार फिर पालम कंट्रोल-टावरको संदेश भेजा । उधरसे उत्तर मिला—'जहाज छोड़ दो, फौरन पैराशूटसे उतर पड़ो ।' गेरा अभी युवा था । एक लंबा जीवन उसके आगे था । उसने कितनी ही सुखद कल्पनाएँ की थीं अपने भविष्यके सम्बन्धमें । उसने एक बार सोचा—वह छलाँग लगा दे । लेकिन उसके बाद क्या होगा ? जलता हुआ चालकरहित जहाज यदि जन-संकुल बस्तीपर गिरा तो······? उसकी आँखोंके सामने था—आगका लहराता हुआ पारावार और चीखते-भागते नर-नारियों तथा बच्चोंका एक विराट् समुदाय एवं आगकी लाल-लाल लपटोंमें जलते हुए अनगिनत मकान, उनमें भरी हुई लाखों नागरिकोंकी मेहनत-मजदूरीसे अर्जित, भविष्यके लिये आश्वासन-रूप सम्पत्ति । उसे लगा—वह यदि कूद पड़ा तो नयी दिल्ली तबाह हो सकती है । यह भारतका केन्द्र-स्थल भी तो है । उसने सोचा—'यदि मुझ अकेलेकी आहुतिसे लाखोंकी जान बचती है तो यह मृत्यु भी मेरे लिये जीवन है । मौत तो एक दिन आनी ही है । क्यों न देशके लाखों भाई-बहिनोंकी प्राण-रक्षामें मैं अपनेको होम दूँ ? क्यों न देशका केन्द्र-स्थल बचा लूँ ?' आत्मोत्सर्गकी भावना प्रबल हो उठी और उसने जहाजको पालम और सफदरजंग हवाई अड्डेके बीचके खाली मैदानकी ओर बढ़ा दिया, हालाँ कि काकपिटके भीतर अब केवल लाल लपटें थीं और जहरीला धुआँ । उसकी त्वचा, उसका हर अवयव अब असह्य पीड़ा और दमघोंटू वातावरणको सहन करनेमें सर्वथा असमर्थ हो रहा था । जहाजमें इजेक्शन सीट नहीं थी । इसलिये उसने जलते हुए जहाजको उलटा किया, आक्सीजनका मुखौटा उतारा, रेडियो संयत्र उतारा और बाहर छलाँग लगा दी । छलाँग लगाते समय उसे जहाजके टेल-बूमका एक जोरका धक्का लगा और वह अचेत हो गया ।

जलता हुआ हवाई-जहाज सफदरजंग हवाई अड्डेपर गिरा । जमीनसे टकराकर पिछला इंजन और धड़ अलग-अलग हो गये । उछलकर जलता हुआ धड़ टूटे हुए नक्षत्रकी भाँति सीधा हैंगरमें जा घुसा और लाल नट-बोल्ट और कलपुर्जोंकी बरसात होने लगी । इस जलती हुई बरसातमें अनेकों घायल हुए । यदि एक छोटा-सा जलता हुआ टुकड़ा दायीं ओरवाले दस्तेपर गिरता तो न जाने कैसा दृश्य उपस्थित होता ।

हवाई अड्डे और दिल्ली नगरकी सारी दमकलें मिलकर भी इस आगपर साढ़े पाँच घंटोंमें काबू पा सकीं ।

घायलोंको अस्पताल पहुँचानेके लिये एम्बुलैंस आ गयी थी । स्ट्रेचर लेकर लोग गेराके पास पहुँचे और उसे तत्काल स्ट्रेचरपर लिटा लिया । वे स्ट्रेचर उठानेवाले ही थे कि गेराने अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंको खोला—सबको लगा वह कुछ कहना चाहता है । पर तत्क्षण ही उसकी विशाल आँखें मुँद गयीं कभी न खुलनेके लिये ! लोगोंने देखा—गेराकी आँखोंमें दिल्लीको भीषण बर्बादीसे बचानेका आत्म-संतोष था ।

इस दुर्घटनामें कुल छः व्यक्ति मृत हुए । गेरा भी उनमेंसे एक था ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभाईजीका कुछ अमूल्य साहित्य

परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मौलिक साहित्यका विस्तृत परिचय 'कल्याण' के गत अङ्कमें प्रकाशित किया गया था। नीचे हम उनके द्वारा अनूदित साहित्य तथा उनके ग्रन्थोंके संस्कृत एवं अंग्रेजी अनुवादोंका परिचय दे रहे हैं। पाठकोंको श्रीभाईजीके इस अमूल्य साहित्यसे लाभ उठाना चाहिये—

श्रीभाईजीद्वारा अनूदित साहित्य

		मूल्य	अबतक प्रकाशित प्रतियाँ
(६०)	श्रीरामचरितमानस (टीकासहित मोटा टाइप)	८.५०	६८,८५०
(६१)	श्रीरामचरितमानस (मझला साइज)	४.००	७,६५,०००
(६२)	विनय-पत्रिका	१.२५	३,९०,०००
(६३)	दोहावली	०.६०	२,३४,२५०

श्रीभाईजीकी हिंदी पुस्तकोंका संस्कृत अनुवाद

(६४)	श्रीप्रेमदर्शनम् (प्रेमदर्शनका अनुवाद)	०.९०	५,०००
(६५)	रसभावविमर्शः (श्रीराधा-माधव-प्रेमतत्त्वका विशद विवेचन)	०.१५	८,०००

Sri H. P. Poddar's Writings reproduced in English

Name of Book	Pages	Price	Copies printed
1. The Philosophy of Love	256	1.25	43,250
2. Way to God-Realization	112	.35	72,250
3. Gopis' Love for Śrī Kṛṣṇa	80	.25	68,250
4. Our Present-Day Education	108	.19	5,750
5. The Divine Name and Its Practice	80	.25	65,250
6. Wavelets of Bliss	36	.15	74,250
7. The Divine Message	16	.07	98,000
8. Transcendental Love and Bliss	36	.20	8,000
9. Nectarean Bliss of Śrī Rādhā-Mādhava	48	.55	5,000
10. Fountain of Bliss	200	2.50	5,000
11. Path to Divinity	200	2.50	5,000
12. Turn to God	200	2.50	5,000
13. Look Beyond the Veil	200	2.50	5,000

गीता-दैनन्दिनी सन् १९७२ ई०

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ-संख्या ४१६, मूल्य साधारण जिल्द ७५ पैसे, हाथ करघेके कपड़ेकी जिल्द ९० पैसे, डाकखर्च एक प्रतिका १.२५ पैसे, तीन अजिल्दका डाकखर्चसहित कुल ३.८० पैसे।

इसमें हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और नये भारतीय शक-संवत्की तिथियोंसहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी तारीखोंका वार्षिक केलेण्डर, प्रार्थना, भारतीय शिक्षा, भगवान् श्रीरामके सदुपदेश, सत्पुरुषोंके सदुपदेश, ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश, नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृतोपदेश, भजनका स्वरूप और चेतावनी आदि सदुपदेश; कुछ जाननेयोग्य उपयोगी बातें—जैसे रेल-भाड़ा, डाक, तार, इन्कमटैक्स, मृत्युकर, माप-तौलकी नयी मेट्रिक प्रणाली, उनका तुलनात्मक परिवर्तन, कागजका माप, दैनिक वेतन और मकान-भाड़ा चुकानेका नक्शा; अनुभूत घरेलू दवाओंके प्रयोग, स्वास्थ्य-रक्षाके सप्त-सूत्र, ध्यान और आरती भी दी गयी है।

☞ गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है। अतः यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। इससे आपके समय तथा भारी डाकखर्चकी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रजि० सं० एल्० १७५

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा निवेदन

(१) 'कल्याण'का यह ४५वें वर्षका १०वाँ अङ्क है। ११वाँ और १२वाँ अङ्क—ये दो अङ्क और निकल जानेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४६वें वर्षका प्रथम अङ्क सदाकी भाँति विशेषाङ्क होगा। इस वर्षका विशेषाङ्क 'श्रीरामाङ्क'के नामसे प्रकाशित होने जा रहा है। श्रीरामाङ्कमें भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीताके स्वरूप-तत्त्व, नामतत्त्व, लीलातत्त्व और धामतत्त्वपर आचार्यों, विद्वानों एवं भक्तोंके बड़े ही महत्त्वपूर्ण विचार रहेंगे। साथ ही इस अङ्कमें भगवान् श्रीरामके विभिन्न आदर्श गुणों, उनके प्रभाव, महत्त्व आदिपर भी विशेष प्रकाश डाला जायगा। भगवान् श्रीरामकी लीला-कथाका अपनी लेखनीद्वारा जगत्में प्रचार-प्रसार करनेवाले प्रमुख ऋषि, आचार्य, कवि और लेखकोंका भी संक्षिप्त परिचय इसमें दिया जायगा। भगवान् श्रीरामके लीला-परिकरोंका संक्षिप्त परिचय एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध श्रीरामभक्तोंके सुन्दर और रोचक आख्यान भी इसमें रहेंगे। भगवान् श्रीरामकी लीलासे सम्बद्ध प्रमुख स्थानों, पर्वतों, नदियों एवं सरोंके माहात्म्य तथा उनकी वर्तमान स्थिति आदिपर भी अधिकारी विद्वानोंद्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला जायगा तथा श्रीरामके वन-गमन एवं वहाँसे लौटनेके मार्गका परिचय भी देनेका विचार है। भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नता और कृपा-प्राप्तिके लिये तथा उनके साक्षात्कारके लिये सफल अनुष्ठान, मन्त्र-स्तोत्र आदि भी रहेंगे। श्रीराम-सम्बन्धी त्यौहारों, व्रतों एवं उत्सवोंकी भी चर्चा रहेगी। इस प्रकार भगवान् श्रीराम-सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयोंपर प्रामाणिक सामग्रीका संग्रह इस अङ्कमें रहेगा। श्रीरामके आदर्श चरित्र और लीला-कथाके स्मरण, चिन्तन, मनन और अध्ययनकी वर्तमान परिस्थितिमें कितनी आवश्यकता है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीराम भारतीय अध्यात्म, धर्म एवं संस्कृतिके आधारस्तम्भ हैं और उनकी आराधना प्रायः प्रत्येक आस्तिकके घरमें होती है। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामको जो व्यक्ति भगवान्के रूपमें स्वीकार नहीं कर पाते, वे भी उनके आदर्श गुणों और मर्यादित जीवनके प्रति नतमस्तक हैं। इस प्रकार यह विशेषाङ्क सभी श्रेणीके व्यक्तियोंके लिये परम उपादेय सिद्ध होगा। भगवान् श्रीराम और भगवती सीताके ध्यानके तथा उनकी लीला-कथाके अनेक सुन्दर, भावपूर्ण रंगीन चित्र भी देनेका विचार है। भगवान्की कृपा एवं संत-महात्माओं एवं श्रीरामभक्तोंके आशीर्वाद तथा बहुमूल्य सहयोगसे यह अङ्क 'कल्याण'के पिछले विशेषाङ्कोंकी भाँति ही उपयोगी तथा सुन्दर होगा, ऐसी आशा की जाती है।

(२) डाक-खर्च आदि बढ़ जानेपर भी गतवर्षकी भाँति इस वर्ष भी 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क दस रुपये १०) ही है। सदस्योंकी सुविधाके लिये मनीआर्डर फार्म इसके साथ भेजा जा रहा है। प्रार्थना है, सदस्य वार्षिक शुल्क सुविधानुसार शीघ्र भेज दें। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें। ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है।

(३) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण-कार्यालय'को हानि न सहनी पड़े।

(४) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य ग्यारह रुपये पचास पैसे है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri